विपय-सूची

सूर का कथा-संगठन

'भागवत' और 'सूरसागर' की तुलना से पता चलता है कि सूरदास ने कई नई कथाएँ गढ़ी हैं। इन मौलिक कथाओं की सूची इस प्रकार होगी—(१) ढाढ़ी की कथा, (२) महराने के पाँड़े की कथा, (३) बरसाने के घामन की कथा, (४) राधा-कृष्ण के प्रथम मिलन और प्रेम-विकास की कथा, (६) राधा के काम-भुजङ्ग से डसे जाने और कृष्ण के गारुडी बनने की कथा, (७) दानलीला, (८) पनघट-लीला, (९) कृष्ण के बहुनायकत्व की कथा जिसके अंतर्गत मान की अनेक कथाएँ हैं और मान-मोचन के कई मौलिक ढङ्ग हैं, (१०) बसंत, होली, फाग, हिंडोला—एक शब्द में, संयोग शृङ्गार की मौलिक योजना, (११) नंद का ब्रज लौट आना और यशोदा के दुःख की कथा, (१२) कृष्ण-राधा मिलन। राधा और गोपियों का सारा प्रेमप्रसंग ही मौलिक है और जिस प्रकार बाल-कृष्ण में ही शृङ्गार की कल्पना कर डाली गई है, उसके पीछे भी परंपरा नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त भागवत की कथाओं के रूप में परिवर्तन कर दिया गया है और कितनी ही कथाएँ दो-तीन बार कही गई हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर का संगठन विचित्र ढङ्ग से हुआ है। नीचे हम इस पर विशद रूप से विचार करेंगे।

पहली बात भागवत की कथाओं के संबंध में है। सूर ने भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध की सभी कथाएँ ले ली हैं,यद्यपि एक-दो को छोड़ कर सब में कुछ परिवर्तन कर दिया है। परिवर्तन

इतना थोड़ा है, इतना सूक्ष्म है कि ध्यान से तुलना करने पर
दिखलाई पड़ता है। फल यह हुआ है कि साधारण पाठक
के कथा-संगठन और भागवत के कथा-संगठन में भेद न
करता। इस पर जब सूर पद-पद पर शुकदेव और व्यास
दुहाई देते जाते हैं, तब हमें इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती
सूर की मौलिकता कहाँ है, कितनी है, यह जानने के लिये
उत्सुक नहीं होता। इसके अतिरिक्त सूर ने भागवत के कु
के कुछ संस्कार किये हैं, सूर ने अपनी ओर से भी कुछ प
किये हैं, परंतु इस परिवर्तन का आभास सहसा नहीं मिल
क्योंकि इनका विस्तार अधिक नहीं है।

अतः साधारण ढंग से कथा का ढाँचा भागवत के आधा
पर ही खड़ा किया गया है। जो घटनाएँ दोनों में समान
उनके क्रम में अंतर नहीं है यद्यपि उनके बीच में सूरदास
मौलिक लीलाओं का समावेश कर देते हैं।

कथा के आरंभ में सूरदास स्वयं ढाढ़ी के रूप में उपस्थित
होते हैं। कदाचित् सूर ने ढाढ़ी की कल्पना उस समय की जब
वल्लभाचार्य ने उनकी प्रशंसा की। इसके बाद ढाढ़ी वल्लभ
सम्प्रदाय के कवियों का एक प्रमुख विषय हो गया, क्योंकि
जन्मोत्सव के समय ढाढ़ी के पद गाये जाने लगे। परन्तु इन
पदों में किसी भी कवि ने सूर की तरह अपने को ढाढ़ी चित्रित
नहीं किया है। इससे स्पष्ट है कि कम से कम जिस रूप में ढाढ़ी
सूरसागर में आता है वह सूर की उपज है। कागासुर की कथा
अन्य असुरवध की कथाओं के ढंग पर ही खड़ी की गई है।
बरसाने और महराने के व्यक्तियों से संबंधित कथाएँ कृष्ण-कथा
को स्थानीय रंग प्रदान करती हैं। इनमें दो विरोधी प्रवृत्तियों
के ब्राह्मणों का चित्रण है; एक कृष्ण को मारने आता है, दूसरा
उनका भक्त हो जाता है। भक्तों की प्रेमभावना भगवान् के

चमत्कार से दृढ़ होती है और बाल्यावस्था इन चमत्कारों के प्रवेश के लिये सबसे उपयुक्त है।

बाललीला में भी कितने ही प्रसंगों का समावेश हुआ है, परन्तु उनके सूत्र भागवत में मिल जाते हैं, जैसे माखनचोरी, गौचारण, वन से लौटने आदि के स्पष्ट उल्लेख भागवत में हैं। सूर की प्रतिभा ने इन पर बड़े-बड़े महल खड़े कर दिये हैं। सारी बाललीला में वल्लभाचार्य के नवनीत-प्रिय के संबंध के दृष्टिकोण का ही विकास हुआ है और शुद्धाद्वैत के पाप-पुण्य निर्लिप्त कृष्ण (ब्रह्म) की ही प्रतिष्ठा हुई है। वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित सेवापद्धति ने इस अंश को विशिष्ट रूप देने में सहायता की है। साथ ही वल्लभाचार्य की प्रमभक्ति यशोदा-गोपियों के सुख-दुःख को लेकर खड़ी की गई थी—बाललीला में उस सुख, उत्कंठा, उल्लास, प्रियविषयक चिंतन, प्रिय-सेवा के आह्लाद आदि का चित्रण हो जाता है जो वात्सल्य-भक्ति के अंग हैं। इस भक्ति का दूसरा भाग कृष्ण-कथा के उत्तरार्द्ध में मिलता है जब यशोदा, नंद और गोपों के कृष्ण-वियोग दुःख को चित्रित किया गया है। सूर इन दोनों स्थलों पर मनोविज्ञान का सहारा लेकर खंड-काव्य की सृष्टि कर डालते हैं। इन दोनों छोरों के बीच की सारी कथा (केवल कुछ प्रसंगों जैसे कालियदमन, गोवर्धनलीला, चीरहरण, रास, अक्रूर का आगमन और कृष्ण का मथुरागमन, गोपिका-विरह और भ्रमरगीत को छोड़ कर) सूर की अपनी उपज है। इसे हम तीन भागों में उपस्थित कर सकते हैं :—

(१) राधा-कृष्ण के प्रेमस्फुरण और प्रेमविकास की कथा। भागवत में इसका इंगित भी नहीं है, अतः इसका बहुत श्रेय सूर को है यद्यपि राधा-कृष्णको प्रेमकथा पहले भी उपस्थित की जा चुकी थी। इसमें सूर को ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, जयदेव, गर्गसंहिता, चंडीदास और विद्यापति से सहारा अवश्य मिल सकता था।

सूर ने इनसे कितना और किस प्रकार का सहारा लिया है, यह हम अभी देखेंगे।

सूर ने राधा-कृष्ण के प्रथम मिलन की कथा की मौलिक कल्पना की है (देखिये चकई-डोरी प्रसंग) और उसका विकास अत्यंत स्वाभाविक ढङ्ग से किया है। परन्तु उन्होंने जयदेव के गीतगोविंद के मङ्गलाचरण श्लोक से सहारा लेकर (लगभग उसका अनुवाद करके) ही पहली बार "नवल प्रेम" की उत्पत्ति की कथा लिखी है। हम यह जानते हैं कि इस मङ्गलाचरण में जयदेव ने ब्रह्मवैवर्त्त पुराण की कथा का परिचय दिया है, परंतु सूरदास ने राधा-कृष्ण दोनों को तरुण बना कर मौलिकता उत्पन्न कर दी है और शृङ्गार को समोचित आश्रय दिया है। इसके अतिरिक्त राधा यहाँ अवतारी नहीं हैं, नंद ऐसा नहीं जानते। इससे कथा लौकिक धरातल पर उतर आती है, चमत्कारिक नहीं रह जाती।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और जयदेव से इतना सहारा लेकर सूर ने उन्हें देर तक छोड़ दिया। उन्होंने श्याम भुजङ्ग से डसे जाने और कृष्ण के गारुड़ी बनने की कथा की स्वयं कल्पना की। नंददास के "श्याम सगाई" ग्रंथ में यही कथा रोला छन्द में इसी रूप में मिलती है, परन्तु जहाँ तक संभव है, नंददास इस कथा के लिये सूर के ऋणी हैं। उनमें नयनवोन्मेषिणी प्रतिभा नहीं थी। वे केवल "जड़िया" थे, "गढ़िया" नहीं थे। सूर "गढ़िया" हैं। उनमें मौलिकता का इतना आग्रह है कि इस विषय में हिंदी के सारे कवि उनके पीछे रह जाते हैं। राधा के मान और मानमोचन की कथा में सूरदास ने जयदेव, विद्यापति और चंडीदास का सहारा नहीं लिया यद्यपि उन्हें ये प्रसंग इन तीनों में मिलते थे। उन्होंने स्वतंत्र रूप से इनकी योजना की। जयदेव और विद्यापति में दूती का विस्तार है, इससे कथा

लौकिक धरातल पर ही रहती है, उसमें आध्यात्मिकता नहीं आती। परन्तु सूर ने दूती का विस्तार नहीं किया है, न स्पष्ट रूप से अभिसार का योजना की है। गीतगोविन्द में राधा कृष्ण को अन्य युवतियों के साथ विलास करता हुआ देख कर मान करती है। विद्यापति में दूती नायिका को मिलनकुञ्ज में ले जाती है। वहाँ कृष्ण नहीं पहुँचते। इससे राधा "खंडिता" हो जाती है और मान करती है। सूर में राधा के दो मान हैं। एक मान स्वतंत्र है, एक बहुनायक-प्रसंग से संबंधित है। स्वतंत्र मान रास के बाद आता है और उसमें राधा कृष्ण के हृदय में अन्य युवती का प्रतिबिम्ब देख कर मान करती है। बहुनायक-प्रसंग वाले मान में राधा स्पष्टतः खंडिता है। कृष्ण दूसरी युवती के घर जाते हैं, सुबह आते हैं लाल-लाल आँखें किये; राधा खंडिता हो जाती है। यहाँ राधा के अभिसार की कथा नहीं है। कृष्ण राधा के घर ही आकर रात में आने का वचन देकर चले आते हैं। मानमोचन के ढङ्ग भी मौलिक हैं।

अन्य कथाओं में राधा की उपस्थिति बताई जाती है। उसका कृष्ण से प्रेम भी चलता है, परन्तु अन्य गोपियाँ भी उसमें भाग लेती हैं। वास्तव में इन लीलाओं में राधा ही कृष्ण के प्रेम की केन्द्र बनती है परन्तु लीला का उद्देश्य कुछ अन्य ही है जैसा हम अभी देखेंगे। कृष्ण और राधा के संबंध में विशद चित्रण गोरस-दान के बाद होता है। राधा स्वयं को भूल जाती है सिर पर दही की मटकी रख कर कोई "कृष्ण कृष्ण ले लो" कहती हुई भटकती है। सखी कृष्ण को पता देती है। कृष्ण कुञ्ज में मिलते हैं—

सांची प्रीति जानि हरि आए
पूरन नेह प्रगट दरसाए
लई उठाइ अंक भरि प्यारी। भ्रमि भ्रमि भ्रम कीन्हों तनु भारी

कुच-जुग भाँति [illegible] [illegible] । बार-बार मुख भरि भरि [illegible]
वृन्दावन पनकुंज [illegible] । स्यामा स्याम नवल नवला [illegible]
मनमोहन मोहिनि सुखकारी । कोकिला [illegible] [illegible] [illegible]
छूटे केश [illegible] गिर छूटे । कंचुकि हार टूटि मुख [illegible]
सूर स्याम [illegible] बड़ाई । नागरि [illegible] [illegible] [illegible]

फिर पनघट लीला में भी राधा है, परन्तु वहाँ उसका विशेष महत्त्व नहीं है, मान में वह प्रधान है। यमुनागमन लीला में भी वह प्रधान है परन्तु सूर की दृष्टि अन्य गोपियों और कथा की ओर एक दूसरे उद्देश्य से लगी है। सूर ने राधा को लेकर कई मौलिक कल्पनाएँ की हैं—

(१) राधा के हार का खो जाना और उसका इस बहाने कृष्ण से मिलना।

(२) रास के अवसर पर राधाकृष्ण का विवाह।

(३) सखियों का राधा को शरमाना, परन्तु राधा का कहना कि वह कृष्ण को पूरी तरह देख ही नहीं पाती (अनुराग-समय के पद)

कृष्ण और राधा का क्या संबंध है, इस विषय में सूर स्पष्ट हैं। राधा कृष्ण को उलाहना देती है—

ब्रज बसि काके बोल सहौं
तुम बिन स्याम और नहिं जानौ सकुचनि तुम्हें कहौं
कुल की कानि कहाँ लौं करिहौं तुमको कहाँ लहौं
धिग माता धिग पिता विमुख तुव भावै तहाँ रहौं

कृष्ण उत्तर देते हैं—

ब्रजहि बसे आपुहि बिसरायो
प्रकृति पुरुष एकै करि जानहु बातनि भेद करायो
जल-थल जहाँ रहौं तुम बिनु नहिं वेद-उपनिषद गायो
द्वै तनु जीव एक हम दोऊ सुख कारन उपजायो

ब्रह्म रूप द्वितीय नहिं कोऊ तब मन त्रिया जनायो
सूर श्याम मुख देखि अलप हँसि आनँदपुञ्ज बढ़ायो

तब राधा परिस्थिति समझ जाती है—

तब नागरि मन हरष भई
नेह पुरातन जानि श्याम को अति आनन्द मई
प्रकृति-पुरुष नारी मैं वे पति काहे भूलि गई
को माता को पिता बंधु को यह तो भेंट नई
जन्म-जन्म युग-युग यह लीला प्यारी जानि लई
सूरदास प्रभु की यह महिमा याते विवश भई

सुनहु श्याम मेरी इक बिनती
तुम हरता तुम करता प्रभु जू, मात पिता कौने गिनती
गेवर मेति चढ़ावत रासभ प्रभुता मेटि करत छिनती
अब लौं करी लोक मर्यादा मानहु थोरहिं दिनती
बहुरि बहुरि व्रज जन्म लेत हौं इह लीला जानी किनती
सूर श्याम चरणनि ते मोको राखत है कहा मिनती

राधा कृष्ण की प्रकृति हैं। वे वास्तव में एक ही हैं। एक ब्रह्म ही "सुख-कारन" दो रूप धारण करता है—एक कृष्ण है, दूसरा राधा। राधा-कृष्ण या ब्रह्म के खेलों में भक्त आनंद लेता है। राधा-कृष्ण की कथा कहने में मुख्यतः लीलावर्णन का ही भाव है। गारुडी की कथा और हार खोने की कथा लीला-मात्र हैं। अनुराग के पदों में राधा के रहस्यमय, अलौकिक प्रेम का चित्रण है। मान के एक प्रसंग में उसी प्रकार "गर्व" से भगवान् के अंतर्धान होने की कल्पना है जिस प्रकार भागवत में रास के प्रसंग में। दूसरे प्रसंग में राधा के रहस्यात्मक प्रेम की व्यंजना है जो प्रिय के हृदय में अन्य स्त्री की छाया भी नहीं देख सकता। वल्लभ-सम्प्रदाय में भक्त का लक्ष्य है कृष्ण को समर्पित हो जाना, आत्मभाव भूल कर अनन्य प्रेम। गर्व ही

आत्मभाव का कारण है। इस गर्व का परिहार होना चाहि
थोड़ा भी गर्व, थोड़ी भी अहंता भगवान् को असह्य है। इ
प्रकार भक्त भगवान् को अत्यन्त आनन्द भाव से प्रेम करता
राधा के उपर्युक्त प्रसंगों में यही रूपक रूप से रखा गया है।

(२) गोपियों का प्रेम :—

भागवत में गोपियों को कृष्ण से संबंधित करने वाले केव
दो प्रसंग हैं—चीरहरण और रास। जैसा व्यास ने स्प
कहा है, ये रूपक मात्र हैं। सूर इस बात को समझते हैं। इसं
से उन्होंने उसी तरह के नए रूपकों की सृष्टि की है। ये रूप
हैं दानलीला, पनघटलीला, बहुनायक कथा। इन तीनों के भीत
क्या संदेश है ?

दानलीला में स्पष्ट ही आत्मसमर्पण का संदेश है—"दान
लेहुँ हौं सब अंगन को"। यही वल्लभ-संप्रदाय का मूलमंत्र है।
चीरहरण में भी यही संदेश है—कि भगवान् से गोप्य क्या
है, आत्मसमर्पण भाव है, तो लाज क्या ? यहाँ भी यही संदेश
है, परन्तु अधिक स्पष्ट रूप में। रूपक ने कथा को स्थूल कर दिया
है, परन्तु साथ ही संदेश अत्यंत स्पष्टता से सामने आया है।
पनघटलीला में कवि कहना चाहता है कि भगवान् भी भक्त की
बाट जोहता है, उसे "संसार" से विरत कर स्वनिष्ठ करना चाहता
है। "गागरी में काँकर" मारने का अर्थ ही यह है कि भगवान्
की ओर से बार-बार इस प्रकार की चेष्टा होती है। जब भक्त
भगवान-निष्ठ हो जाता है तो उसकी दशा उस गोपी की-सी
हो जाती है जो दूध बेचने निकलती है तो "कृष्ण ले लो" कहने
लगती है। यह आत्मविस्मृति भावभक्ति का परम विकास है।
इस रूपक में भगवान् की "पुष्टि" का रूप और उसकी प्रबलता
का चित्रण है। पुष्टि द्वारा भगवान् भक्त को संसार-विमुख

और सम्मुख करता है। जब अंत में भक्त भगवान् के रूप पर मोहित ही हो जाता है तो भगवान् को कुछ करना नहीं रह जाता। भक्त स्वयं अग्रसर होने लगता है। पुष्टिमार्ग के भक्तों का मुख्य आधार है भगवान का सौन्दर्य। इस प्रसंग में उस रूप की सुन्दर प्रतिष्ठा है और भगवान्-भक्त के बराबरी के संबंध की भी व्यञ्जना है।

अब रह जाती है बहुनायकत्व कथा—उसका अर्थ है कि एक ही भगवान् अनेक भक्तों को एक ही समान, एक ही समय प्राप्य है परन्तु उसकी प्राप्ति के लिये प्रतीक्षा और विरह की साधना की आवश्यकता है। वह तो अंतर्यामी है—गर्व, ईर्ष्या, द्वेष, इनके होने पर उसका मिलना ही असंभव है।

गोपियों में जीव का ही सामूहिक चित्रण है। वास्तव में उन्हें रूपक के सहारे खड़ा किया गया है। जो कृष्ण की लीलाएँ हैं, वे ही रूपक भी हैं। इसीलिये उनमें जहाँ एक ओर लीला भाव की सुस्पष्टता नहीं, वहाँ दूसरी ओर गोपियों के प्रेमविकास के संबंध में विशेष उद्योग नहीं। वल्लभाचार्य ने गोपियों को "श्रुति" कहा है। सूर भी एक स्थान पर ऐसा कहते हैं। दूसरे स्थान पर वे भागवत का आधार लेकर उन्हें देवताओं का अवतार बताते हैं। परन्तु वास्तव में सूर गोपियों को एक अभिनव दृष्टि से उपस्थित करते हैं। गोपियाँ सामान्य जीव हैं। वे सहज ही कृष्ण पर आसक्त हो तन्मयतावस्था को प्राप्त होती हैं। सारे रूपकों में भगवान् और जीव के संबंध को ही चित्रित किया गया है। साधारण रूप से लीलामात्र गढ़ने की भावना नहीं है। व्यास का जो उद्देश्य रहा है, वही यहाँ

वल्लभाचार्य ने गोपियों के

को भी आदर्श माना है। परन्

वह वात्सल्य रति को प्रधानता देते थे। अतः इस विषय में उन स्पष्ट मंतव्य भी नहीं मिल सकता था। परन्तु वे यह अव जानते थे कि यहाँ गोपियों का प्रेम शृङ्गार-रति से भिन्न है उ उन्होंने कहा भी है—

वस्तुतस्तु भगवद्विषयस्य स्नेहस्यैवैषी न ताहृशं वक्तुं या तथा लौकिकेषु मि नाम्पां वा तदाभासो रसशास्त्रे निरूप्यते तद्वान्ते भगवद्भावयद् भगवद्भक्तरीति भावनापि न लगेगा लौकिके तात भवितुमर्हति।

स्पष्ट है कि सूर ने गोपियों के मिलन-वियोग सुख-दुःख क खड़ा किया तो वल्लभाचार्य के सिद्धांत को ही आगे बढ़ाया परन्तु उन्होंने रूपकों की सृष्टि कर कथाओं को और भी ऊँचे आध्यात्मिक भूमि पर रखने की चेष्टा की। आलोचकों की दृष्टि मे वे असफल हैं, परन्तु आलोचक उनके काव्य को शास्त्र के भीतर से देखते हैं, नैतिकता के भीतर से देखते हैं, काव्य और धर्मानुभूति के भीतर से नहीं। इसीसे वे सूर को लांछित समझते हैं।

(२) संयोगचित्रण (हिंडोला, जलविहार, बसन्त, फाग, होली)—इन सबमें रास के ढंग पर ही संयोगचित्रण है, सूर ने इन प्रसंगों में जयदेव के काव्य से सहारा लिया है और केवल विषय-तन्मयता के द्वारा इन्हें अलौकिक भूमि पर उठाने की चेष्टा की है। रूपक इनमें नहीं है। परन्तु आध्यात्मिकता उसी ढंग से व्यक्त है जिस ढंग से जयदेव के गीतगोविंद में व्यक्त हुई है; यद्यपि जयदेव जैसे स्थूल संभोग के प्रसंग यहाँ नहीं हैं। राधा-कृष्ण के निकुञ्जविहार में सूर ने जयदेव को ही आदर्श [illegible] की तरह सुरति, सुरतारंभ, सुरतांत, [illegible] वर्णन किये हैं। विद्यापति भी उनके सामने

रहे होंगे। परन्तु इन नये प्रसंगों में वैसी स्थूलता नहीं है। ये कवि के काव्य को सबसे उत्कृष्ट रूप में हमारे सामने रखते हैं। इन नवीन प्रसंगों के सम्बन्ध में कई समस्याएँ हैं :

(१) क्या ये प्रथमतः सूर की उपज हैं और उनसे संप्रदाय में आए हैं या सूर ने इन्हें उसी तरह लिखा है जिस तरह अष्टछाप के अन्य कवियों ने इन्हें बसंत कीर्तन के लिये लिखा ?

(२) यदि ये सूर की उपज हैं तो उनका मंतव्य क्या है ? वास्तव में ये प्रसंग मौलिक हैं। साहित्य की परम्परा में पहली बार इनका दर्शन अष्टछाप के कवियों में ही होता है। लगभग सभी अष्टछाप के कवियों के पद इन पर मिलते हैं। जहाँ तक कह सकते हैं, व्रज-प्रदेश में इस प्रकार के कृष्णलीला के पद चल रहे होंगे। कृष्ण-राधा की होली, फाग, हिंडोल व्रज-प्रदेश में अवश्य प्रसिद्ध होंगे। इसलिये सूर ने संयोग की पराकाष्ठा चित्रित करने के लिये उनका ही रूपक ग्रहण किया। फागुक्रीड़ा की समाप्ति पर सूर गाते हैं—

फागु रंग करि हरि रस राख्यो। रह्यो न मन युवतिन के काख्यो
सखा-सग सबको सुख दीनो। नर-नारी मन हरि हरि लीनो
जो जेहि भाव ताहि हरि तैसे। हित को हित कंटक को तैसे
नंद-यशोदा बालक जान्यो। गोपी कामरूप कर मान्यो

स्पष्ट है कि सूर ने इस सिद्धांत को कथा में ही गूँथ दिया है। हाँ, फूलडोल संभव है बाद में गढ़ा गया हो। फूलडोल वल्लभकुल का प्रधान उत्सव है। उसका आरम्भ सूर ही की हिंडोल कल्पना से हुआ होगा। सूर ने एक सुन्दर हिंडोल-प्रसंग लिखा है, परन्तु यह फूलडोल नहीं है, विश्वकर्मा का गढ़ा हुआ स्वर्णरत्न हिंडोल है। जो हो, यह निश्चित है वल्लभकुल के नित्य और नैमित्तिक आयोजन पर सूर की कल्पना और उनके काव्य की छाप है।

रहे होंगे। परन्तु इन नये प्रसंगों में वैसी स्थूलता नहीं है। ये कवि के काव्य को सबसे उत्कृष्ट रूप में हमारे सामने रखते हैं। इन नवीन प्रसंगों के सम्बन्ध में कई समस्याएँ हैं :

(१) क्या ये प्रथमतः सूर की उपज हैं और उनसे संप्रदाय में आए हैं या सूर ने इन्हें उसी तरह लिखा है जिस तरह अष्टछाप के अन्य कवियों ने इन्हें वसंत कीर्तन के लिये लिखा ?

(२) यदि ये सूर की उपज हैं तो उनका मंतव्य क्या है ? वास्तव में ये प्रसग मौलिक हैं। साहित्य की परम्परा में पहली बार इनका दर्शन अष्टछाप के कवियों में ही होता है। लगभग सभी अष्टछाप के कवियों के पद इन पर मिलते हैं। जहाँ तक कह सकते हैं, व्रज-प्रदेश में इस प्रकार के कृष्णलीला के पद चल रहे होंगे। कृष्ण-राधा की होली, फाग, हिंडोल व्रज-प्रदेश में अवश्य प्रसिद्ध होंगे। इसलिये सूर ने संयोग की पराकाष्ठा चित्रित करने के लिये उनका ही रूपक ग्रहण किया। फागुक्रीड़ा की समाप्ति पर सूर गाते हैं—

फागु रंग करि हरि रस राख्यो। रह्यो न मन युवतिन के काख्यो
सखा-संग सबको सुख दीनो। नर-नारी मन हरि हरि लीनो
जो जेहि भाव ताहि हरि तैसे। हित को हित कंटक को तैसे
नंद यशोदा बालक जान्यो। गोपी कामरूप कर मान्यो

स्पष्ट है कि सूर ने इस सिद्धांत को कथा में ही गूँथ दिया है। हाँ, फूलडोल संभव है बाद में गढ़ा गया हो। फूलडोल वल्लभकुल का प्रधान उत्सव है। उसका आरम्भ सूर ही की हिंडोल कल्पना से हुआ होगा। सूर ने एक सुन्दर हिंडोल-प्रसंग लिखा है, परन्तु यह फूलडोल नहीं है, विश्वकर्मा का गढ़ा हुआ वर्णरत्न हिंडोल है। ... है वल्लभकुल के ... और उनके

...आप है

रहे होंगे। परन्तु इन नये प्रसंगों में वैसी स्थूलता नहीं है। ये कवि के काव्य को सबसे उत्कृष्ट रूप में हमारे सामने रखते हैं। इन नवीन प्रसंगों के सम्बन्ध में कई समस्याएँ हैं :

(१) क्या ये प्रथमतः सूर की उपज हैं और उनसे संप्रदाय में आए हैं या सूर ने इन्हें उसी तरह लिखा है जिस तरह अष्टछाप के अन्य कवियों ने इन्हें वसंत कीर्तन के लिये लिखा ?

(२) यदि ये सूर की उपज हैं तो उनका मंतव्य क्या है? वास्तव में ये प्रसग मौलिक हैं। साहित्य की परम्परा में पहली बार इनका दर्शन अष्टछाप के कवियों में ही होता है। लगभग सभी अष्टछाप के कवियों के पद इन पर मिलते हैं। जहाँ तक कह सकते हैं, ब्रज-प्रदेश में इस प्रकार के कृष्णलीला के पद चल रहे होंगे। कृष्ण-राधा की होली, फाग, हिंडोल ब्रज-प्रदेश में अवश्य प्रसिद्ध होंगे। इसलिये सूर ने संयोग की पराकाष्ठा चित्रित करने के लिये उनका ही रूपक ग्रहण किया। फागुक्रीड़ा की समाप्ति पर सूर गाते हैं—

फागु रंग करि हरि रस राख्यो। रह्यो न मन युवतिन के काख्यो
सखा-सखा सबको सुख दीनो। नर-नारी मन हरि हरि लीनो
जो जेहि भाव ताहि हरि तैसे। हित को हित कंटक को तैसे
नंद यशोदा बालक जान्यो। गोपी कामरूप कर मान्यो

स्पष्ट है कि सूर ने इस सिद्धांत को कथा में ही गूँथ दिया है। हाँ, फूलडोल संभव है बाद में गढ़ा गया हो। फूलडोल वल्लभकुल का प्रधान उत्सव है। उसका आरम्भ सूर ही की हिंडोल कल्पना से हुआ होगा। सूर ने एक सुन्दर हिंडोल-प्रसंग लिखा है, परन्तु यह फूलडोल नहीं है, विश्वकर्मा का गढ़ा हुआ स्वर्णरत्न हिंडोल है। जो हो, यह निश्चित है वल्लभकुल के नित्य और नैमित्तिक आयोजन पर सूर की कल्पना और उनके काव्य की छाप है।

भ्रमरगीत के प्रसंग में सूर ने काव्य का पु
प्रसंग खड़े किये जैसे पाती-प्रसंग, प्राकृतिक वस्तुओं
भाव (चंद्र, मेघ, कोकिल आदि के प्रति उपालम्भ
मूल विषय भागवत को ही सामने रख कर लिख
उसमें निर्गुण के प्रति सगुण कृष्ण और योग के सम्मुख
प्रतिष्ठा है। भागवत में निर्गुण और योग को महत्त्व मि
सूर ने इनका विरोध किया है। उन्होंने सगुण कृष्ण और
की स्थापना की है। मधुकर के प्रति कहे पदों में उन्होंने
नूतन उद्‌भावनाएँ उपस्थित की हैं। इस विषय को उन्होंने
विस्तार से लिखा है। दर्शन, काव्य और भक्ति की जो त्रि
भ्रमरगीत में बह रही है, वह अन्य स्थान पर दुष्प्राप्य
केवल इसी के बल पर सूर को उनका वह पद मिल जाता
आज उन्हें मिला हुआ है। प्रसंग को उपस्थित करने और उस
विस्तार का ढंग मौलिक है।

राधा-कृष्ण का पुनर्मिलन ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में है और वह
राधा की वियोगदशा का भी विस्तृत चित्रण है। सूरदास
पुराण से भली भाँति परिचित जान पड़ते हैं, परन्तु उन
मिलन-प्रसंग को अत्यंत स्वाभाविक रूप से नये प्रकार से लि
है। ब्रह्मपुराण को इससे अधिक श्रेय नहीं कि उसने राधा
पुनर्मिलन की कथा लिखी है—परन्तु वह अस्वाभाविकता और
अनर्गल बातों में दब गई है। सूर ने इस कथा में राधा के प्रेम
की परिणति का चित्रण किया है। रुक्मिणी के संग राधा के प्रेम-
व्यवहार ने राधा के चरित्र को और भी उज्ज्वल कर दिया है।
वास्तव में राधा के विरहवर्णन और पुनर्मिलन के अभाव में
उसका चरित्र-चित्रण अधूरा रह जाता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर ने कथा की
सुरक्षित रखते हुए भी उसका संगठन

है। अनेक स्थलों पर यह भ्रम हो सकता है कि कथा असंगठित है, परन्तु ऐसा नहीं है। कथा विशृङ्खलित मालूम देती है, इसके कई कारण हैं—

(१) कथा प्रबंधात्मक रूप में छंदबद्ध नहीं है। यह खंडात्मक रूप में पद-बद्ध चलती है। भिन्न-भिन्न खंडों में एक स्वाभाविक विकास की शृङ्खला है, परन्तु प्रत्येक खंड स्वतंत्र रूप से भी रखा जा सकता है यद्यपि इससे कितने ही ऐसे छंद बेकार हो जायेंगे जो "कड़ी" के रूप में सामने आते हैं।

(२) एक ही कथा दो रूपों में लगभग बराबर चलती है — एक वर्णनात्मक छंद में, दूसरी पद में। कभी-कभी तीन या चार रूप भी हैं। भ्रमरगीत तीन हैं। कई कथाओं के एक-एक पद में कई वर्णन हैं।

(३) अन्य अष्टछाप के कवियों के तत्संबन्धी पद फुटकर हैं। अतः सूर के सम्बन्ध में भी यही धारणा हो सकती है कि उन्होंने फुटकर पद ही संग्रह कर दिये हैं। परन्तु यह ठीक नहीं है। अन्य कवि संप्रदाय की नित्य और नैमित्तिक सेवाओं से प्रभावित थे; सूर इस तरह प्रभावित नहीं थे। अन्य कवियों ने "खंड" कथाओं की उतनी सृष्टि नहीं की जितनी फुटकर पदों की। सूर ने कथा के रूप में भी पद लिखे हैं।

(४) सूर के बाद "दानलीला" "मानलीला" जैसे खंडात्मक पद-बद्ध कथाकाव्यों की परंपरा चल पड़ी। इससे सूर के इन कथा-प्रसंगों को भी खंडकाव्य ही समझा जाने लगा जिससे यह अनुमान लगा कि सूरसागर कई खंडकाव्यों का संग्रह है। यह इससे और भी पुष्ट हो गया कि सूर के कितने ही ऐसे प्रसंग सूरसागर से अलग खंडकाव्य नाम से चल रहे हैं ("नैमित्तिक कीर्तन-संग्रह" में एक मानकथा को "सूरसागर" नाम से संग्रहीत किया गया है

व्रजयात्रा)—ये कथायें वर्णनात्मक छंदों में नहीं हैं। परन्तु इनमें से कुछ कथायें (१८वें अध्याय की दावानलकथा, वर्षाशरद, गोपिकागीत, नंदगोपवार्तालाप और कृष्णाभिषेक) पदों में भी नहीं हैं। इन कथाओं के न होने से कथा-विकास में बाधा अवश्य पड़ती है। अक्रूर-प्रसंग के बाद एकदम कंसबध आ जाता है—बीच का क्रम नहीं मिलता। परन्तु इस एक को छोड़ कर कथा समान रेखा पर चलती है। इस प्रकार एक ही कथा दो रूपों में (कुछ स्थलों को छोड़ कर) बराबर चलती है। दोनों की तुलना करने पर पता चलेगा कि—

(१) दानलीला और मानलीला को छोड़ कर सूर की नई सामग्री वर्णनात्मक छंद में नहीं है। इनका छंद भी वही नहीं है जो शेष वर्णनात्मक कथा का छंद है। इसलिये इसको खंडकाव्य! के रूप में जोड़ा मान कर हम कह सकते हैं कि सूर की मौलिक सामग्री वर्णनात्मक छंदों में नहीं है।

(२) कुछ सामग्री ऐसी है जो मौलिक है, परन्तु वर्णनात्मक छंद में है जैसे सिद्धर ब्राह्मण की कथा और ब्राह्मण का प्रस्ताव (महराने से बामन आयो)।

(३) पदबद्ध कथा में जो मौलिक उद्‌भावनायें सूर ने की हैं, वही मौलिक उद्‌भावनायें छंदबद्ध कथा में उसी प्रकार मिलती हैं। (इन्द्रयज्ञभंग, कालियदमन आदि की तुलना कीजिये)।

(४) छंदबद्ध कथा विशेष रसपूर्ण नहीं है। उसमें इतिवृत्तात्मकता और वर्णनात्मकता का प्राधान्य है। सूर का महत्त्व पदों में ही है।

(५) कुछ वर्णनात्मक छंद कड़ी के रूप में भी आये हैं। संभव यह है कि वर्णनात्मक छंद में कही कथा बाद की उपज है। उसकी आवश्यकता उस समय पड़ी जब सूर पदों को भागवत

सूर ने दशमस्कंध को सामने रखकर ही सुगठित रूप से अपनी सामग्री उपस्थित की थी। जब उन्हें भागवत के रूप में उसे उपस्थित करना पड़ा, तब उन्हें सारे स्कंध लिखना आवश्यक थे। परन्तु इन स्कंधों की सामग्री उनके लिये महत्वपूर्ण नहीं है :

(१) उनकी रुचि कृष्ण में ही विशेष थी।

(२) इन स्कंधों में ज्ञानविज्ञान-संबंधी नीरस सामग्री भरी पड़ी थी। उसका बहुत-सा भाग सूर के आध्यात्मिक सिद्धान्तों से मेल नहीं खा सकता था। इसी से हम देखते हैं कि सूर ने भागवत के महत्वपूर्ण ११वें स्कंध को सारी सामग्री ही हड़प ली। जहाँ-जहाँ अन्य स्थलों पर उन्होंने आध्यात्मिक भाव रखे हैं, वहाँ-वहाँ उन्होंने अपने मत को ही रखा है। उत्तरार्द्ध कृष्णकथा भी उनके लिये महत्त्वपूर्ण नहीं थी। अतः उसे भी अत्यंत संक्षेप में लिखा गया है। अन्य स्कंधों में भी बड़ी-बड़ी कथाओं को एक दो छंदों में कह कर काम चलाया। इस अत्यंत संक्षेप से कहने की प्रवृत्ति में नीरसता, काव्यगुणहीनता, इतिवृत्तात्मकता का आ जाना आवश्यक था। फिर भी जहाँ-जहाँ उनके मन के प्रसंग मिलते गये, वहाँ वहाँ सूर ने पद के रूप में कथा लिखी जैसे भीष्मप्रतिज्ञा, रामकथा आदि।

(३) सारे भागवत का अनुवाद महत् कार्य था और ढलती उम्र में सूरदास उसे नहीं कर सकते थे। वह अपनी अक्षमता जानते थे। उनकी रुचि भी उस ओर नहीं थी। वे पौराणिक नहीं थे। भक्त थे। कवि थे। अतः इतिवृत्तात्मक पौराणिक कथाओं को विस्तार-पूर्वक लिखना उनका उद्देश्य नहीं रहा।

(४) भागवत के एकादश स्कंध पर सुबोधिनी टीका भी है। इसी से सूर ने इस स्कंध की सामग्री नहीं ली। वे अपनी सीमाएँ जानते थे। सुबोधिनी के दशमस्कंध की टीका में जिन सिद्धान्तों

(२) कथा के बीच की कड़ियाँ पूरी नहीं हैं, परन्तु नाटक की भाँति वीथिका सब जगह है जिससे कथासूत्र जोड़ने में कठिनाई नहीं होती।

(३) कहीं-कहीं खंडकाव्य ही कथोपकथनात्मक है (जैसे दानलीला)। इस प्रकार हमें सूर के गीतों में वे गुण भी मिल जाते हैं जो प्रबंधकाव्य के गुण हैं। सच तो यह है कि सूर-सागर किसी बँधी हुई काव्य-श्रेणी में नहीं आता। उसे हम न महाकाव्य कह सकते हैं न प्रबन्धकाव्य, न खंडकाव्य, न गीति-काव्य, न दृश्यकाव्य। वह एक साथ ही यह सब है—परन्तु शास्त्रीय ढंग से नहीं, अपने ढंग से। हम दूसरे स्थान पर सूर की सभादों को निबाहने की कुशलता का परिचय दे रहे हैं। भागवत वर्णनात्मक है, कहीं-कहीं भक्तिपूर्ण भावोन्मेष के कारण गीतात्मक भी हो उठी है, परन्तु उसमें सरस कथोपकथन नहीं हैं, काव्य का पुट भी अधिक नहीं है। सूर ने अपनी कृष्णकथा में जिस बालक और प्रेमी रूप का विस्तार किया है, उसमें कथोप-कथन ने प्राण डाल दिये हैं। जैसा हमने देखा है उन्होंने भागवत से अनुप्राणित होकर कितने ही रूपक खड़े किये हैं। सूर ने कृष्णकथा को जिस रूप में सोचा, उसमें प्रबन्धकाव्य लिखा ही नहीं जा सकता था। माता के प्रतिदिन के वात्सल्य व्यवहार और पुत्र की दैनिक क्रीड़ाएँ कथा का विषय नहीं हो सकतीं। इस प्रकार उस ढंग के प्रेम के विकास पर जो सूरसागर में हैं कथा खड़ी नहीं की जा सकती। कारण कि उसकी रंगभूमि बाहर नहीं है, यशोदा, राधा और गोपियों का हृदय ही इस कथा की रंगभूमि है। इनके हृदय पर कृष्ण की कैसी छाप पड़ती है, कृष्ण का रूप, व्यवहार और प्रेम कैसे धीरे-धीरे उनके हृदय में पैठता है; कैसे वह अगाध जलधि-सा गंभीर, सुनिश्चित और रहस्यमय हो उठता है, यह प्रबंधकाव्य का विषय नहीं है।

यह हृदय के समझने का विषय है। हृदय की भाषा है गीत
इसी से सूर का हृदय गीतों में फूट पड़ा है। सूर की कथा ज
एक ओर बाहर ब्रज के इतिवृत्त पर चलती है, देश-काल में का
बढ़ती है, वहाँ दूसरी ओर वह भावभूमि में अग्रसर नी
उतरती है; भ्रमरगीत तक आते-आते भावना ने ही कथा का स
धारण कर लिया है। भ्रमरगीत गोपियों के हृदय की कथा है

अतः सूरसागर के संबंध में हम यह कह सकते हैं कि उस
कथा के संबंध में सूर निश्चित हैं, वह मौलिक प्रसंगों के सा
उपस्थित की गई है, उसमें गीतात्मकता है और कथा भी है
उसकी पृष्ठभूमि बाहर ब्रज है और भीतर नंद-यशोदा, गो
गोपियों, राधा और उद्धव का हृदय। उसमें अध्यात्म, शृङ्गा
भक्ति—सभी का सुन्दर मिश्रण है। परन्तु दशमस्कंध उत्तरा
और अन्य स्कंधों की सामग्री में न मौलिकता है, न हृद
ग्राहिता। सूरसागर को भागवत का रूप देकर पौराणिक म
कवि के ऊपर विजयी हुआ है। वल्लभसंप्रदाय में भागवत
जितनी मान्यता थी, वह सब जानते हैं। उसी से प्रभावित होक
या विशेष आग्रह से सूर ने दशमस्कंध के आगे-पीछे की साम
जोड़ने की चेष्टा की, परन्तु वे उस सामग्री को ठीक ढंग
नहीं दे सके। उनकी सहृदयता, प्रतिभा और प्रकृति इस क
में बाधक हुईं। फिर भी हमें सूरसागर के वर्तमान रूप के लि
भागवत का ही ऋणी होना होगा, यद्यपि भागवत के अनुकर
से विशेष लाभ नहीं हुआ। सूरसागर भाषा भागवत का स्थ
नहीं ले सका परन्तु उसकी कृष्णकथा पदों के सौन्दर्य के कार
ही भागवत की कथा को उत्तर भारत से हटाकर उसके स्थ
पर प्रतिष्ठित हो गई।

एक प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि सारे दशमस्कं
की सामग्री परंपरा की रक्षा करते हुए भी मौलिक है। पिछ

ष्ठों में हम सूर की मौलिकता पर विचार कर चुके हैं। वर्णनात्मक न्द और पदों दोनों में एक सी मौलिकता है। यह मौलिकता सी समय आ सकती थी जब सारे दशमस्कंध की कल्पना क साथ हुई हो और कथा-सामग्री के संबंध में सूर निश्चित सद्धान्तों से परिचालित हों। इस मौलिकता के कई रूप हैं :

(१) भागवत की कथाओं में मौलिकता की स्थापना;

(२) भागवत के संकेतों का मौलिक विस्तार, जैसे बाललीला, ौचारण, गोपीप्रेम आदि के संबंध में;

(३) राधा की कथा का आरम्भ, मध्य और अंत;

(४) गोपियों और राधा को लेकर कई रूपक-प्रसंगों की सृष्टि;

(५) भ्रमरगीत की कथा को भागवत के विपरीत धारा में हाकर नवीन उद्देश्यों की सृष्टि और पुष्टि;

(६) संयोग चित्रण के मौलिक प्रसंग;

(७) राधा-कृष्ण प्रेम की रहस्यात्मकता की व्यंजना के लिये

(क) युगलदम्पति का सौन्दर्य

(ख) ,, ,, ,, केलिविलास

(ग) दृष्टिकूट के पद

(८) गोपीकृष्ण की प्रेमव्यंजना के लिये मुरली के प्रति पदों, यन के प्रति पदों, मन के प्रति पदों और भ्रमरगीत के पदों की ौलिक सामग्री।

यही स्थल सूर के काव्य के प्रधान अंग हैं। शेष भाग महत्त्व-ूर्ण नहीं हैं। यह स्पष्ट है कि सूर ने मौलिकता का विशेष ाग्रह रख कर कृष्णकथा को अभिनव रूप दे दिया है।

२

सूरसागर और भागवत की कृष्णलील

१—अलौकिक लीलाएँ

अलौकिक लीलाओं में, जिनमें अधिकांश असुरवध से सम्ब
रखती हैं, जहाँ तक हो सका है, सूर ने भागवत की कथाओं
पालन किया है, परन्तु जैसा हम कह चुके हैं, उन्होंने कभी भी भा
वत का शब्दशः अनुवाद नहीं किया। वे कथा का सार लेकर जा
तहाँ कवित्व का पुट देते हुए चलते हैं और भागवत के विस्तार
स्तुति आदि—एवं जटिल भावों को छोड़ देते हैं। इस प्रकार उस
कुछ अधिक मानवता आ जाती है। जहाँ भागवत में ये लीला
कृष्ण के ऐश्वर्य, अलौकिकता आदि को प्रकट करती हैं, वा
सूरसागर में केवल लीलाएँ मात्र हैं। फल यह हुआ है कि
अधिक सरस हो गई हैं।

दूसरी बात यह है कि सूर प्रत्येक असुरलीला को कंस
संबन्धित कर देते हैं। इस प्रकार उनकी सारी कथा में यह ए
सूत्रता आ जाती है जो भागवत में भी नहीं है।

तीसरे, वे कुछ लीलाएँ अपनी ओर से बढ़ा देते हैं
भागवत में उनका अभाव है (जैसे सिद्धर वामन की कथा)।।

चौथे, जैसा आगे स्पष्ट हो सकेगा, लगभग प्रत्येक लीला मे
उन्होंने मौलिक होने के प्रयत्न में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य
दिया है। यह परिवर्तन किस ढंग का है, इस पर हम आगे
करेंगे।

नीचे हम लीला को भागवत में कही गई लीला से तुलना करते हैं।

१—पूतनावध (भाग० स्कंध १०, ६)

सूरसागर में यह लीला केवल पदों में है। भागवत में भी इसका संबंध कंस से स्थापित किया हुआ है (श्लोक २)। परन्तु सूर ने उस श्लोक के इंगित मात्र को विस्तार देकर पाठक के लिए अधिक ग्राह्य बना दिया है।

कंसराय जिय सोच पड़ी
कहा करौं काको ब्रज पठऊँ विधना कहा करी
बारम्बार विचारत मन में भूप नींद बिसरी
सूर बुलाई पूतना सों कह्यो कछ न विलंब घरी
आजु हीं राजकाज करि आऊँ
बेगि तुम्हारो सकल शोक शिशु जो सुख आयसु पाऊँ
तौ मोहन मूर्छन वशीकरन पढ़ि अमित देह बढ़ाऊँ
अग सुभग सखी के मधु मूरति नयनन माँह समाऊँ
घसिकै गरल चढ़ाइ उरोजनि लै रुचि सों पय प्याऊँ
सूरदास प्रभु जीवित ल्याऊँ तों पूतना कहाऊँ

इसके अतिरिक्त काव्य का थोड़ा सा स्पर्श देकर सूर कथा को सुन्दर बना देते हैं। भागवत की भाँति यहाँ भी पूतना सुन्दर स्त्री का रूप धर के नंद के घर गई है—

अहो महरि पालागन मेरो हौं तुम्हारे सुत देखन आई

सूरसागर के एक पद में जहाँ सूर ने भागवत का अनुकरण कर के कृष्ण को पालने पर पौढ़ाया, ×[१] वहाँ दूसरे पदों में पूतना के कृष्ण को यशोदा की गोद से लेने का उल्लेख किया है ×[२]।

×१ पौढ़ाये हरि सुभग पालने नंद महरि कछु काज सिधाई
बालक लिये बईनि दुष्टमति हरषि स्तनन पान कराई
×२ कान्है लै जसुमति कोरा में रुचि कर लेइ लगाई

पहले पद में भागवत का पालन करते हुए भी सूर ने विभिन्न रची है। भागवत में यशोदा के सामने ही पूतना ने कृष्ण को पलंग से उठाया है, यहाँ "नंद महरि" धाम में भीतर चली गई है। एक पद में कृष्ण यशोदा की गोदी में वज्र जैसे भारी पड़ जाते हैं, इससे माता को कष्ट होता है और पूतना के माँगने पर वह उसे तुरन्त बालक सौंप देती है।×[३] यह बालक के भारी पड़ने की बात भी मौलिक रही। इस प्रकार की छोटी-छोटी नवीन उद्भावनाएँ सूरदास प्रत्येक कथा में उपस्थित किया करते हैं। वास्तव में उनका उद्देश्य लीला-गान था, पौराणिक या परम्परागत कथा की रक्षा नहीं।

२—सिद्धर (श्रीधर) ब्राह्मण की कथा

यह कथा भागवत में नहीं है। सूरदास ने इसे कहाँ से लिया यह नहीं कहा जा सकता। कदाचित् यह कथा स्वयं उनके मस्तिष्क की उपज हो। कथा इस प्रकार है—

श्रीधर बामन परम कसाई
कह्यो कंस सों वचन सुनाई
प्रभु मैं तुम्हरो आज्ञाकारी
नंदसुवन को आवों मारी
कंस कह्यो तुमते इहु होई
तुरत जाहु कर विलँब न कोई
श्रीधर नंदभवन चलि आयो
यशुदा उठि कै माथो नायो
करो रसोई मैं चलि जावों
तुम्हरे हेत गंगजल लावों

×३ नन्दसुत तबही पहिचानी असुरधरनि असुरन को भार॑
आपुन वज्र समान भए हरि माता दुखित भई भरभार॑

हँसि कहि यशुदा यमुना गई
सिद्धर कही भली यह भई
उन अपने मन मारन ठान्यो
हरिजी ताको तब ही जान्यो
ब्राह्मण मारे नहीं भलाई
अँग याको मैं देऊँ नसाई
जब ही ब्राह्मण हरिढिग आयो
हाथ पकर हरि ताहि गिरायो
जोड़ चाप लै जीभ मरोरी
दधि ढरकायो भाजन फोरी
राख्यो कछु तेहि मुख लपटाई
आपु रहे पलना पर आई
रोवन लागे कृष्ण विनानी
यशुमति आई गई लै पानी
रोवत देखि कह्यो अकुलाई
कहा करयौ तैं विप्र अन्याई
ब्राह्मण के मुख बात न आवै
जीभ होई तो कहि समुझावै
ब्राह्मण को घर बाहर कीन्हो
गोद उठाइ कृष्ण को लीन्हो
पुरवासी सब देखन आए
सूरदास हरि के गुन गाए (पृ १०, छंद ५१)

३—कागासुर-वध

कागासुर की कथा भागवत में नहीं है। पता नहीं, सूरदास के पास इसका क्या आधार है। कदाचित् श्रीधर ब्राह्मण की भाँति यह कथा भी मौलिक हो—

कागरूप एक दनुज धरयो
नृप आयसु लेकर माथे पर हर्षवंते उर गर्व भरयो
कितिक बात प्रभु तुम आयसु लै यह जानो मो जात मरयो
इतनी कहि गोकुल उठि धायो आइ नंदघर छाज रह्यो
पलना पर पौढ़े हरि देखे तुरत आइ नैननि सों अरयो
कंठ चापि बहु बार फिरायो गहि पटक्यो नृप पास परयो
तुरत कंस तेहिं पूछन लाग्यो क्यों आयो नहिं काज सरो
बीत्यो जाम ज्वाब जब आयो सुनहु कंस तेरी आयु सरयो
धरि अवतार महाबल कोऊ एकहि कर मेरो गर्व हरयो
सूरदास प्रभु कंस निकंदन भक्त हेतु अवतार धरयो

४—शकटासुर-वध

भागवत में शकटभंजन (१०, ६) की कथा इस प्रकार है—"...इधर दूध के लिए रोते-रोते कृष्णचंद्र ने दोनों पैर उछाले ॥६॥ पालने में श्रीकृष्ण जी लेटे थे और ऊपर शकट (छकड़ा) धरा था। कृष्ण के नवपल्लव-सम कोमल-कोमल पैरों के प्रहार से यह छकड़ा उलट पड़ा और उसमें धरे हुए दही, दूध आदि, अनेक रसों से भरे हुए काँसे आदि के विविध बर्तन गिरकर चूर-चूर हो गए एवं छकड़े के भी चक्र, अक्ष और कूबर आदि अंग टूट-फूट गए ॥७॥ उत्सव में आई हुई गोपियों सहित यशोदा, नंद और अन्यान्य गोप-गण इस अद्भुत व्यापार को देख विस्मय से व्याकुल होकर कहने लगे कि—यह क्या है ! छकड़ा आप ही आप कैसे उलट पड़ा ? गोप और गोपियाँ छकड़ा उलटने का कोई कारण न निश्चित कर सके। तब वहाँ खेल रहे बालकों ने कहा कि इसी (कृष्ण) ने रोते-रोते पैर उछाल कर छकड़ा गिरा दिया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥८॥ किन्तु गोप गोपियों ने 'बालकों

की बात' कहकर उसपर विश्वास नहीं किया, क्योंकि उन्हें बालक के अप्रमेय बल का ज्ञान न था ॥१०॥

स्पष्ट है कि इस कथा में "शकट" असुर नहीं है। कृष्ण के अप्रमेय बल का निदर्शन ही इस कथा-सृष्टि का उद्देश्य है।

सूरसागर में यह प्रसंग ही दूसरी तरह है। कागासुर की असफलता पर कंस उदास होता है। सेनापतियों को हाल सुनाता है। कहता है, "ऐसो कौन भारि है ताको मोहिं कहै सो आइ। वाको मारि अपनपौ राखै सूर व्रजहि सो जाइ ॥१०८॥" शकटासुर कहता है मुझे प्रधान सेनापति कर दो तो इस काम का बीड़ा उठाता हूँ—

नृपति बात यह सबनि सुनायो
मुहां चही सेनापति कीनो शकटासुर मन गर्व बढ़ायो
दोउ कर जोरि भयो तब ठाढ़ो प्रभु आयसु मैं पाऊँ
ह्यांते जाइ तुरत ही मारों कहो तो जीवत ल्याऊँ
यह सुनि नृपति हर्ष मन कीनो तुरतहि बीरा दीनो
बारंबार सूर कहि ताको आपु प्रशंसा कीनो
पान ले चल्यो नृप ध्यान कीन्हो .
गयो शिर नाइकै गर्व ही बढ़ाइ कै शकट को रूप धरि असुर लीन्हो
सुनत घहरानि व्रज लोग चकृत भए कहा आघात ध्वनि करत आवै
देखि आकाश चहुँ पास दशहूँ दिशा डरे नरनारि तनुसुधि भुलावै
आपु गयो तहीं जहँ प्रभु रहे पालने करगहे चरण अंगुठ चचोरहि
किलकि किलकि हँसत बाल शोभा लसत आनि तिहि डसत रिपु आयो
नेक पटक्यो लात शब्द भयो आघात गिरयो महरात शकटा सहार्‌यो
सूर प्रभु नंदलाल दनुज मार्‌यो ख्याल मेटि जंजाल दुख मन उबार्‌यो

इन दो ही पदों में सूरदास ने कथा को एकदम बदल दिया है। यही नहीं, वे शकटासुर को व्यक्तित्व प्रदान करने में भी सफल हुए हैं।

५—तृणावर्त-वध

भागवत १०, ६ में तृणावर्त्त की कथा विस्तार-पूर्वक दी हुई है। यहाँ उसे स्पष्ट रूप से "कंस का भेजा हुआ" लिखा है। सूरसागर में यह कथा कुछ संक्षेप में है, परन्तु मूलतः वही है जो भागवत में है (११०)। परन्तु सूरदास ने इस प्रसंग के अंत में वात्सल्यपूर्ण चित्र देकर कथा का अंत अत्यंत सुन्दर कर दिया है। भागवत में अंत इतना अच्छा नहीं हो सका है। ऐसे प्रसंगों के अवसर पर भागवत में अद्भुत रस की ही पुष्टि होती है, सूरसागर में वात्सल्य रस की ओर कवि का ध्यान होने के कारण प्रत्येक प्रसंग एक दूसरी ही पीठिका लिए हमारे सामने आता है, अतः उसका रूप नवीन हो जाता है।

६—महराने के पांडे की कथा

भागवत में यह कथा नहीं है। अन्य ग्रन्थों में भी नहीं मिलती, अतः स्पष्ट ही सूर की कल्पना-प्रसूत है। कथा इस प्रकार है—

महराने तै पांडे आयो
ब्रज घर घर बूझत नंदरावर पुत्र भयो सुनिकै उठि धायो
पहुच्यो आइ नंद के द्वारे यसुमति देखि अनंद बढ़ायो
पाय धोइ भीतर बैठायो भोजन को निज भवन लिपायो
जो भावै सो भोजन कीजै विप्र मनहिं अति हर्ष बढ़ायो
बड़ी बयस विधि भयो दाहिनो धनि यसुमति ऐसो सुत जायो
धेनु दुहाइ दूध लै आई पांडे रुचि कै खीर चढ़ायो
घृत मिष्टान्न खीर मिश्रित करि परसि कृष्णहित ध्यान लगायो
नैन उघारि विप्र जो देखै खात कन्हैया देखन पायो
देखो आइ यशोदा सुतकृत सिद्ध पाक इहि आइ जुठायो

महरि विनय दोऊ कर जोरे घृत मिष्टान्न पय बहुत मँगायो
सूर श्याम कत करत अचगरी बारबार ब्राह्मणहि खिजायो

पाडे नहि भोग लगावन पावै
करि पाक जबै अर्पत है तबहिं तबहिं छुवै आवै
इच्छा करि मैं ब्राह्मण न्योत्यौं तू गोपाल खिझावै
वह अपने ठाकुरहिं जेवाँवत तू ऐसे उठि धावै
जननी दोष देहु जनि मोको करि विधान बहु ध्यावै
नैन मूँदि कर जोरि नाम लै बारहि बार बुलावै
कह अंतर क्यों होइ भक्त को जो मेरे मन भावै
सूरदास बलि हौं ताको जो जन्म पाइ यश गावै

सफल जन्म प्रभु आजु भयो
धनि गोकुल धनि नंद यशोदा जाके हरि अवतार लियो
प्रगट भयो अब पुण्य सुकृत फल दीनबन्धु मोहि दरश दियो
बारंबार नंद के आगन लोट द्विजे आनद भयो
मैं अपराध किन्यो बिन जाने को जाने केहि भेष जँयो
सूरदास प्रभु भक्तहेत बश यशुमति हित अवतार लयो (१३०)

७—वत्सासुर-वध (भाग० १०-११)

भागवत में यह कथा केवल ३ छंदों (४१, ४२, ४३) में है। सूरसागर में यह कथा भागवत की भाँति ही है; संक्षेप में है, परन्तु सूरदास इस छोटे-से प्रसंग में भी जो एक छंद (१५०) में है, नवीन उद्‌भावना भरने में नहीं चूकते। भागवत में कृष्ण और बलदेव साथ-साथ ही हैं, सूरसागर में अलग-अलग हो गए हैं—

चले बछरू चरावन ग्वाल
वृन्दावन सब छाँडिके लै गये जहँ घनताल
परम सुन्दर भूमि देखत हँसत मनहि बढ़ाइ

आपु लागे तहाँ खेलन बच्छ दिये बगराइ
जानि कै हलधर गये तहँ बाल बछरा पास
रोहियो नंदनहि देखत हरष भए हुलास
तालरस बलराम चाख्यो मन भयो आनंद
गोपसुत सब टेरि लीने सुधि भई नँदनंद
कहो बछरा हाँकि ल्यावहु चलहु जहाँ कन्हाइ
तालरस के पान ते अति मत्त भए बलराइ

परन्तु सूरदास की मौलिकता यहीं तक समाप्त नहीं हो भागवत में कृष्ण वत्सासुर का वध करते हैं, सूरसागर बलराम—

तहाँ छल करि दनुज धायो धरे बछरा भेसि
फिरत ढूँढत श्याम को अति प्रबल बल को देखि
सबै बछरनि घेरि ल्याए बहु न घेरयो जाइ
दाऊ कहि बालकनि टेरयो वृषभसुत न धराइ
कह्यो मन इहि अबहिं मारौं उठे चलहि सँभारि
टेरि लिए सब ग्वाल बालक गए आपु उचारि
आगे ह्वै हत को बिडारयो पूछ हाथ लगाइ
पकरि के भुज सों फिरायो ताल के तर आइ
असुर लै तरु-सों पछारयो गिरयो तरु भहराइ
ताल सों तरु-ताल लाग्यो उठ्यो बन थहराइ
बच्छ असुर को मारि हलधर चले सबनि लिवाइ
सूर प्रभु को बीर आछौ तिहूँ भुवन बड़ाइ

एक दूसरे पद में कथा भागवत का पूर्ण अनुकरण करती है जिससे स्पष्ट है कि सूर भागवत की कथा से पूर्णतः परिचित भी थे।

बछरा चारन चले गोपाल
सुबल सुदामा अरु श्रीदामा संग लिए सब ग्वाल
दनुज एक तहँ आई पहुँचेउ धरे बछ का रूप

हरि हलधर दिशि चितइ कह तुम जानत हौ इह बीर
कहेव अन्हि दानो इहि मारो धारे वत्स शरीर
तब हरि सींग गह्यो यक कर सों यक कर सों गहे पाइ
फेरिकहि बलसों छिन भीतर दीनो ताहि गिराइ

८—बकासुर-वध

भागवत में बकासुर-वध की कथा स्कं० १०, ११ छंद ४६-५१ तक इस प्रकार है—

"एक दिन सब ग्वालबाल जलाशय के निकट जाकर अपने-अपने बछड़ों को जल पिलाने लगे। उन्होंने देखा कि वहाँ पर एक बड़ा भारी जीव बैठा है, जैसे वज्र के प्रहार से फट कर किसी पर्वत का शिखर गिर पड़ा हो। उसे देखकर सब ग्वाल-बाल बहुत ही भयभीत हुए। वह जीव बकासुर नाम महादैत्य था जो बगुले का रूप धरकर आया था। उस तीक्ष्ण चोंच वाले महाबली असुर ने सहसा आकर कृष्णचंद्र को निगल लिया। बकासुर के द्वारा कृष्ण को निगला हुआ देख बलदाऊ आदि ग्वालबाल कृष्ण के बिना इंद्रियों के समान, अचेत हो गये। बकासुर के कंठ में जाकर कृष्णचंद्र जी अग्नि के समान उसके तालू को जलाने लगे, तब ग्वाल-बाल रूप जगत के गुरु और पिता कृष्ण को उसी समय उसने उगल दिया और कृष्ण को अक्षत शरीर देख कुपित हो, फिर चोंच उठाकर मारने दौड़ा। इस प्रकार आते हुए कंस के सखा बकासुर की चोंच को सज्जनों के स्वामी कृष्ण ने दोनों हाथों से पकड़ लिया और देवगण को प्रसन्न करते हुए सब बालकों के सामने ही लीलापूर्वक तृण के समान बीच से फाड़ डाला।"

सूरसागर (१५०) में यह लीला इस प्रकार है—

बन बन फिरत चरावत धेनु
श्याम हलधर संग है बहु गोप बालक सेनु
तृषित भई सब जानि मोहन सखन टेरत बेनु
बोलि ल्यायो सुरभि गण सब चलौ यमुन जल देनु
हेरि देदे ग्वाल बालक कियो यमुन तट गैन
बकासुर रचि रूप माया रह्यो छल करि आइ
चंचु एक पुहुमी लगाई इक अकास समाइ
आगे बालक जात हैं ते पाछे आए धाइ
श्याम सों सब कहन लागे आगे एक बलाइ
नितहिं आवत सुरभि लीने ग्वाल गोसुत संग
कबहुँ नहिं इहि भाँति देख्यो आज को सो रंग
मनहिं मन तब कृष्ण जान्यो बका असुर विहंग
चोंच फारि विदारि डारौं पलक में करौं भंग
निदरि चले गुपाल आगे बकासुर के पास
सखा सब मिलि कहन लागे तुमन जियके आस
अजहुँ नाहिं डेरात मोहन बचे कितने गास
तब कह्यो हरि चलहु सब मिलि मारि करहिं बिनास
चले सब मिलि जाइ देख्या अगम तन बिकरार
इत धरणि उत व्योम के बिच गुहा के आकार
पैठि बदनु बिदारि डार्‌यो अति भए विस्तार
मरत असुर चिकार पार्‌यो "मार्‌यो नंदकुमार"
सुनत धुनि सब ग्वाल डरपे अब न उबरे श्याम
हमहिं बरजत गयो देखो कियो ऐसो काम
देखि ग्वालन बिकलता तब कहि उठे बलराम
बका बदन बिदारि डार्‌यो अबहिं आवत श्याम
ग्वाल हरि तब टेरि लीने सबै आवहु धाइ
चोंच फारि बका संहार्‌यो तुमहुँ कहौ सहाइ

निकट आए गोप बालक देखि हरि मुख पाइ
सूर प्रभु के चरित अगणित नेति निगमन गाइ

६—अघासुर-वध

अघासुर-वध प्रसंग भागवत १०,१२ के १३–३१ छंदों का विषय है। सूरसागर में इसे अत्यंत संक्षेप में कह दिया गया है (१५१, १५२)। भागवत में ग्वाल-बालक कृष्ण के पहले ही अजगर के मुँह में कूद जाते हैं, कहते हैं कि कृष्ण अवश्य सहायता करेंगे यदि यह असुर हुआ (छं० २४)। कृष्ण उनको बचाने के लिए ही कूदते हैं। सूरसागर में कृष्ण और बालक एक ही साथ कूदते हैं। कृष्ण पहले ही समझ जाते हैं कि यह एक राक्षस आ गया है, इसका वध करना है। वही ग्वाल-गायों को लेकर कूदते हैं—

> कृष्ण कह्यो मन ध्यान असुर इक बस्यो अघूरै
> बालक बछरा राखिहीं एक बार ले जाउ
> कछुक जनाऊँ अपनपो हो अब लौं रहो सुभाउ
> असुर कुलहिं संहार धरणि को भार उतारौं
> कपटरूप रचि रह्यो दनुज यदि तुरत पछारौं

भागवत में ग्वाल-बालों के अंदर चले जाने पर कृष्ण की प्रतीक्षा में अघासुर मुँह खोले रहता है। जब कृष्ण कूद पड़ते हैं तो मुँह बंद कर लेता है। सूरसागर में भी वह मुँह बन्द कर लेता है। सूरसागर में अब कृष्ण डरे हुए बालकों को बताते हैं कि यह असुर है। वे जी छोड़ देते हैं। उनका विश्वास डगमगा जाता है। तब कृष्ण देह का विस्तार करते हैं। अघासुर होठ बन्द किए रहता है। कृष्ण ब्रह्मरंध्र फाड़ कर निकलते हैं। बाहर आकर बालकों पुकारते हैं। अब उन्हें आश्वासन होता है (हम अज्ञान कत डरत हैं कान्ह हमारे

पास)। भागवत में कृष्ण मुँह से निकलते हैं। उसमें बाल मर जाते हैं। कृष्ण की संजीविनी दृष्टि पाकर जी उठते हैं। सूरसागर में बालक मरते नहीं। इस प्रकार हम कथा के चित्र में एक अत्यंत सूक्ष्म अंतर अवश्य देखते हैं। बालकों का सहज स्थिर भय, कृष्ण का आश्वासन आदि मनोविज्ञान के सहारे इस प्रसंग को उस प्रकार नीरस नहीं होने दिया जिस प्रकार भागवत का प्रसंग नीरस है।

१०—धेनुकासुर-वध

भागवत १०, १५ (छं० २०—४०) में यह कथा विस्तारपूर्वक कही गई है। सूर ने एक छंद में ही उसको समाप्ति कर दी है। कथा मूलतः वही है जो भागवत में है। इस कथा में सूरदास ने कोई नई उद्भावना नहीं की।

११—प्रलंबासुर-वध

प्रलंब-वध की कथा भागवत १०, १४ छन्द १७—३० में वर्णित है। सूरदास ने यह लीला अत्यंत संक्षेप में कही है। ढंग भी दो हैं। अन्तर इस प्रकार है—

(१) भागवत में प्रलंबासुर का वध बलराम ने किया है, कृष्ण ने नहीं। सूरसागर में उसे कृष्ण ने मारा है।

(२) पदों में जो कथा कही है उसमें घटना भागवत की ही वर्णित है। बालक का रूप धर कोई असुर ग्वालों में खेलने लगता है और कृष्ण को कंधे पर चढ़ा कर ले जाता है। परन्तु उसमें इस कथा का इंगित है विस्तार नहीं। वर्णनात्मक छन्द में लिखी दूसरे ढंग की कथा प्रत्येक भाँति नवीन सामग्री उपस्थित करती है उसकी घटना भी सूर की कल्पित है—

> एक दिवस प्रलंब दानव को लीन्हों कंस बुलाई
> कह्यो जाइ मारो नंद ढोटा [illegible]

तेहि कहि के आयो ब्रज भीतर करत बड़ो उतपात
नर-नारी देखत सब डरपे कीन्हो हृदय संताप
हरि ताको दे सैन बुलायो मो पै काहे न आवत
तब वह दोऊ हाथ उठाये आयो हरि देखि धावत
हरि दोऊ हाथ पकरि कै ताके दियो दूरि फटकारी
गिरो धरणि पर अति विह्वल होइ रह्यो न देह सँभारी
बहुरो उठ्यो सँभारि असुर वह धायो निज दुखदाई
देखि भयानक रूप असुर को सुर नर गए डराई
न्हँुधा घेरि असुर धरि पटक्यो शब्द उठ्यो आघात
चौंकि परयो कंसागार सुनि के भीतर चल्यो हहरात

१३—गोवर्धनपूजा और इन्द्रमानमोचन लीला

भागवत में ये लीलाएँ १०, २४-२५ का विषय हैं। सूरसागर में लीलाएँ तीन बार कही गई हैं। यद्यपि मूलकथा सूरसागर और भागवत में एक ही है, परन्तु आगे के विस्तार में अंतर होने से सूरसागर की कथा में विशेष सरसता आ गई है :

(१) सूरसागर की कथा भागवत की कथा से पहले शुरू होती है, यह भूमिकांश सूर की कल्पना है। पृष्ठ २१० (छं० ५—११) और २२२-२२३ की सामग्री एकदम नई है।

(२) भागवत १०, २४ (छं० १२-२२) में कृष्ण नंद को मृत्यु, कर्म आदि के संबंध में गंभीर तत्त्वोपदेश देते हैं। सूरदास ने इन अंशों को निकाल दिया है। यह भागवत में इन्द्र की पूजा के बदले गोवर्धनपूजा के लिये गोपों को तैयार कराने के हेतु है। सूरदास ने तत्त्वज्ञान को हटाकर, इस प्रसंग की कल्पना ही दूसरी भाँति की है :

सुरपति पूजा जानि कन्हाई। बारबार बूझत नँदराई
कौन देव की करत पुजाई। सो मोसों तुम कहहु बुझाई

महर कह्यो तब कान्ह सुनाई । मत्र देवन को राई
तुमरे हित मैं करत पुजाई । जाते तुम रहो कुशल कन्हाई
सूर नंद कहि भेद बनाई । मीर बहुत पर जाहु सिराई
जाहु घरहि बलिहारी तेरी । सेज आइ सोवो तुम मेरी
मैं आवत हौं तुम्हरे पाछे । भवन जाहु तुम मेरे बाछे
गोपन लीन्हे कान्ह बुलाई । मत्र कही एक मनहि समाई
आजु एक सपने कोउ आयो । शख चतुर्भुज चारी बतायो
मोसों यह कहि-कहि समझायो । यह पूजा तुम किनहिं सिखायं
सूर श्याम कहि प्रगट सुनायो । गिरिगोवर्धन देव बतायो
तब यह कहन लगे दिवराई । इंद्रहि पूजे कौन बड़ाई
कोटि इन्द्र हम छिन में मारे । छिनहि में फिरि कोटि सँभारे
जाके पूजे फल तुम चखहु । ता देवे तुम भोग लगावहु
तुम आगे वह भोजन लैहै । मुँह माँग्यो फल तुमको दैहै
ऐसो देव प्रगट गोवर्धन । जाके पूजे बाढ़े गोधन
समुझि परि यह कैसी बानी । ग्वाल कही यह अकथ कहानी
सूर श्याम यह सपनो पायो । भोजन कौन देव ही खायो
मानहु कह्यो सत्य यह बानी । जो चाहो व्रज की रजधानी
जो तुम मुँह माँग्यो फल पावहु । तो तुम अपने करन जेंवावहु
भोजन सब लैहैं मुँह ।मांगि । पूजन सुरपति तिनके आगे
मेरी कही सत्य करि मानहु । गोवर्धन की पूजा आनहु
सूर श्याम कहि कहि समुझायो । नंद गोप सबके मन भायो

दूसरे स्थान पर भी यही है—

नन्द कह्यो घर जाहु कन्हाई
ऐसे में तुम जैहो जिनि कहु अहो महरि सुत लेहु बुलाई
सोइ रहो हमरे पलिका पर कहती महरि हरि सों समुझाई
और महरढिग श्याम बैठि के कीनो एक विचार बनाई
सपने आजु मिल्यो मोको इक बड़ो पुरुष अवतार जनाई

कहन लग्यो मोसों ए बातें पूजत हौ तुम काहि मनाई
गिरि गोवर्धन देवन को मणि सेवहु ताको भोग चढ़ाई
भोजन करै सबनि के आगे कहत श्याम यह मन उपजाई
सूरदास गोपन आगे यह लीला कहि कहि प्रगट सुनाई

(३) सूरदास का वर्णनात्मक अंश (पूजा की तैयारी, पूजादि) अत्यंत विस्तृत और कवित्वपूर्ण है, अतः सरस है। भागवत में कृष्ण गोवर्धन पर "विशाल रूप" से प्रगट होते हैं, परन्तु भुजाएँ दो ही हैं (२४, २५) परन्तु सूर ने उन्हें सहसभुज बना दिया है (ऐसो देव कहूँ नहिं देखे सहस भुजा धरि खात मिठाई) भागवत में गोवर्धन का रूप कृष्ण जैसा नहीं है, परन्तु सूरसासार में यह स्पष्ट लिखा है कि गोवर्धन रूप में "कृष्ण" रूप से कोई अंतर नहीं था—

गिरिवर श्याम की उनहारि

× × ×

वहै कुण्डल वहै माला वहै पीत पिछौरि
शिखर शोभा श्याम की छवि श्याम छवि गीरि जोरि

इस प्रकार का कल्पना ने सूर को नंद, यशोदा, ललिता, राधा आदि की वात्सल्य आदि प्रेम-भावनाओं को प्रगट करने का अवसर दिया है।

(४) अध्याय २५ के इन्द्रकोप एवं गोवर्धन-धारण के प्रसंग में भी सूर की प्रतिभा ने मौलिकता प्रकट करने के अनेक अवसर ढूँढ लिये हैं। सूरसागर में सुरपति की मेघों को आज्ञा, उनके गुण गर्जन-तर्जन, प्रलयवर्षा, इन्द्र की चिंता और क्षोभ अधिक विस्तार से लिखे गए हैं। उनके कवित्वपूर्ण अंश ने इन्द्र को व्यक्तित्व प्रदान कर दिया है जिसका भागवत में अभाव है। जिस समय श्रीकृष्ण ने गोवर्धन धारण कर लिया है,

इस प्रकार भागवत में नंद गोपों और गोपियों को [illegible] के अनेक [illegible] दर्शन किए गए हैं। भागवत में इस अंश को अध्याय २८ में लिखा गया है। और इसमें वर्णित भी कुछ नहीं है।

(४) श्रीमद्भागवत में इस प्रसंग की समाप्ति इस प्रकार है—इन्द्र का घमंड चूर हो गया, तब उन्होंने अभिमानहीन होकर अपने मेघों को वर्षा करने से निवृत्त किया ॥२४॥ उसी समय आकाश में एक भी मेघ नहीं रहा, बन्द हो गयी और वर्षा रुक गई एवं सूर्य निकल आये ॥२५॥

सूरसागर में इन्द्र के अभिमानमोचन की कथा का रूप दे दिया गया है। इन्द्र स्वयं कृष्ण के पास क्षमा याचना के लिये उपस्थित होते हैं (२२६-२३१)।"

१३—वरुणालय से नंद को छुड़ाने की कथा

यह कथा भागवत स्कंध १०, अध्याय २८ का विषय है। पहले श्लोक से १०वें श्लोक तक यह कथा है। इसके अनन्तर इसके परिशिष्ट-स्वरूप कृष्ण को गोपियों को अपना निर्गुण-सगुण लोक दिखाने की कथा है जो सूरसागर में नहीं है।

सूरसागर में यह कथा भागवत की कथा के साथ-साथ ही चलती है। कोई नई उद्भावना नहीं है। परन्तु भागवत में यह कथा संक्षेप में है, सूर ने इसे अपने ढंग पर विस्तारपूर्वक लिखा है।

(१) नंद के एकादशी व्रत को सूर ने विस्तारपूर्वक लिखा है यह समय का प्रभाव है—

उत्तम शुक्र एकादशि आई। भक्ति-मुक्ति दायक सुखदाई
निराहार जलपान विवर्जित। पाप न रहत धर्मफल अर्जित

नारायण हित ध्यान लगायो। और नहीं कहुँ मन बिरमायो
बासर ध्यान करत सब बीत्यो। निशि जागरण करन मन चीत्यो
पाटंबर दिपि मन्दिर छायो। शालिग्राम तहाँ बैठायो
धूप दीप नैवेद्य चढ़ायो। प्रहुप मड्ली तापर छायो
प्रेम सहित करि भोग लगायो। आरति करि तब माथो नायो
सादर सहित करी नँद पूजा। तुम तजि देव और नहिं दूजा

(२३२)

(२) नंद को जब वरुण के दूत ले गये तो वरुण बड़े प्रसन्न हुए कि अब कृष्ण आयेंगे। उनकी रानियाँ भी बड़ी प्रसन्न हुईं और नंद का बड़ा आदर-सत्कार किया गया। यह सब सूर की कल्पना रही।

(३) भागवत १०, २८ छंद ४—७ तक वरुण द्वारा कृष्ण की पूजा और प्रार्थना है, परन्तु सूर की इस विनय की रचना अधिक सुन्दर, भक्तिपूर्ण और सरस है। दोनों विनयों की पंक्तियों का सूक्ष्म रीति से मिलान करने पर सूर की प्रतिभा का परिचय हो सकेगा।

(४) नंद ने लौटने पर गोपियों-गोपों आदि से वरुण के यहाँ का प्रसंग कहा, वह सूर में अधिक विस्तार पा सका है।

(५) सूर इस कथा में "एकादशी माहात्म्य" का प्रचार करते दीखते हैं। वे अपनी रचना को पौराणिक ढंग पर समाप्त करते हैं—

जो या पद को सुने-सुनावै
एकादशि व्रत को फल पावै

भागवत में इस प्रकार का प्रयत्न नहीं किया गया है।

१४—ऊखल-बंधन और यमलार्जुन-उद्धार

ये कथायें क्रमशः भागवत १०, ६ व १० अध्यायों का विषय सूरसागर में ये लीलाएँ दो बार कही गई हैं। एक लीला पदों है, एक वर्णनात्मक चौपाई छंद में। भागवत में कृष्ण का ऊ बंधन के प्रसंग को संक्षेप में इस प्रकार कहा गया है। य दूध मथ रही हैं। साथ ही कृष्ण को दूध भी पिला रही "इतने में चूल्हे पर चढ़ा हुआ दूध उफनने लगा, अतएव य ने कृष्ण को वैसे ही छोड़ दिया और आप दूध उतारने के जल्दी से गई, कृष्णचन्द्र उस समय भी तृप्त नहीं हुए थे, इ उनको क्रोध आ गया। कुपित कृष्ण ने फरक रहे अरुण दाँतों से दबा कर पास ही पड़े हुए लोढ़े से दही का माठ डाला और झूठ-मूठ रोते हुए वहाँ से चल दिये, एवं ३ जाकर एकांत में धरा हुआ मक्खन खाने लगे (४।६)। य ने लौट कर यह उत्पात देखा। कृष्ण ऊखल पर चढ़े मक्ख रहे थे और बन्दरों को लुटा रहे थे, छड़ी लेकर मारने पहुँ कृष्ण भागे। यशोदा पीछे भागी। उन्होंने कृष्ण को पकड़ और रस्सी लेकर ऊखल से बाँधने लगीं। सूरसागर में यह इस प्रकार से केवल एक छंद में लिखी है—

यशोदा हरि गहि राजत करपै
गावत गोविंद चरित मनोहर प्रेमपुलकि चित धरं
उफनत छीर शरीर तन व्याकुल तब ही भुजा छुड़ा
माखन फोरि दही सब डारेव लवनी मुख लपटा
लैकर दाँवरि यशोदा दौरी बाँधन कृष्ण न पा
द्वै द्वै अंगुर घटै जेवरी ताते अचरज आ
नारद शाप भए यमलार्जुन तिन हित आप बँधा
[illegible] आइ यशोदा छाँधे देखन आ

परन्तु सूर ने इस प्रसंग को मुख्यतः गोपियों के घरों में कृष्ण की मक्खन चोरी से संबंधित कर दिया है—

ग्वालिन उरहनो भोरहि ल्याई
यशुमति कहाँ गयो तेरो कन्हाई
माखन मथि भरि धरी कमोरी
अबही मोहन लै गयो चोरी
भलो कर्म ते सुतहि पढ़ायो
बारेही तें मूँड चढ़ायो
यह सुनतहि यशुमति रिसमानी
कहाँ गयो कहि शारङ्गपानी
खेलत ते औचक हरि आये
जननी बाह पकरि बैठाये
मुख देखत यशुमति पहचानो
माखन बदन कहाँ लपटानो
फिरि देखे तो ग्वालिनि पाछे
माता मुख चितवत नहिं आछे
चोरी के सब भाव बताये
माता सँटिया ढूँक लगाये
माखन खात जा परघर को
बाँधत तोहि नेक नहिं घर को
बाहु गहे ढूँढति फिरै डोरी
बाँधो तोहिं छकै को छोरी
बाँधि पचि डोरी नहिं पूरे, इत्यादि

प्रसंग को इस प्रकार से बदल देने का कारण सूर का कवित्व था। इसमें उन्हें उलाहना लाने वाली गोपियों का क्षोभ, उनका यशोदा से कृष्ण को खोलने की प्रार्थना करना, यशोदा-गोपियों का कथोपकथन, बँधे हुए कृष्ण के रोने-हिचकियों का वर्णन

आदि अनेक भावपूर्ण मनोवैज्ञानिक और काव्य-रस-प्रधान मिल गये। पुष्टिमार्ग में "नवनीतप्रिय" कृष्ण ही की महत्ता। अतः कृष्ण की इस लीला को माखनचोरी से जोड़ देने से को उपासना-भाव एवं नवनीतप्रिय की कथा के विस्तार के अवकाश मिल गया।

सूरदास ने यमलार्जुन-उद्धार की कथा अत्यंत संक्षेप में लि है। नारद द्वारा कुबेर पुत्रों के शाप की कथा जो भागवत १०, ध्याय १—२३ तक फैली हुई है, सूरसागर में नहीं है। इ प्रकार कुबेर-पुत्रों का स्तुति (भागवत १०,१० छं० २६-३८) संक्षेप में है और भागवत में जहाँ वह ज्ञानमंडित है, वहाँ सू सागर में केवल "धन्य धन्य" कह देने पर समाप्त हो जा है—

> धनि ब्रज कृष्ण जहाँ वपुधारी। धनि यशुमति ब्रजहि अवतारी
> धन्य नंद धनि धनि गोपाला। धन्य धन्य गोकुल की बाला
> धन्य गाइ धनि द्रुम बनचारन। धनि यमुना हरि करत विहारन
> धन्य उरहनो मातहि ल्याई। धनि माखन चोरत यदुराई
> धन्य सुजन ऊखल मढ़ि ल्याये। धन्य दाम सुत्र कृष्ण बँधाये

सूरदास ने इस प्रसंग में एक मौलिकता भी रखी है—

> "शंखचक्र कर शारङ्गधारी। भक्त हेतु प्रगटे बनवारी"

भागवत में कृष्ण इस प्रकार कुबेरपुत्रों को दर्शन नहीं देते।

संक्षेप में, सूरसागर की इन कथाओं का अपना मौलिक व्यक्तित्व है और सूर की अत्यंत सुन्दर रचनाओं में इनका स्थान है।

१४—ब्रह्मा-वत्सहरणलीला

यह भागवत १० स्कंध के १२, १३ अध्यायों का विषय है। ... में इस लीला को संक्षेप से दो-तीन छन्दों में कहा गया

है (पृ० १२८ छन्द ४१, पृ० १२६ छन्द ४७, ४८, ४६, ५० स्तुति पृ० १२६-६० छन्द ५२, ५३, ५४, ५५, ५६ और पृ० १२६ छन्द ८) परंतु विस्तार-पूर्वक लीला एक ही बार कही गई है (पृ० १२७-२८) जो वर्णनात्मक है, गीतात्मक नहीं।

भागवत में ब्रह्मा अघासुर-वध की लीला से चकित हो जाते हैं और कृष्ण के दवत्व की परीक्षा के लिये वत्सहरण करते हैं। सूरसागर में इस ओर संकेत तो है, परन्तु लीला का कारण दूसरा दिया गया है। ब्रह्मा वृन्दावन-लीला को देख कर विस्मित होते हैं। यह सृष्टि कृष्ण न उनसे बिना परामर्श लिए रची थी, अतः ब्रह्मा सोचते हैं कि वह उस सृष्टा को जिसने उन्हें सृष्टि-रचना का काम सौंपा था, क्या उत्तर दगे।

सूरसागर में वत्सहरण के बाद जब ब्रह्मा लौट आते हैं तो चकित होते हैं क्योंकि ब्रज में वह लीला उसी प्रकार चल रही है। उनके भ्रम को सूर ने नए ढङ्ग से चित्रित किया है—

देख्यो जाइ जगाइ बाल गोसुत जहँ राखे
बिधि मन चकृत भए बहुरि ब्रज को अभिलाखै
छिन भूतल छिन लोक में छिन आवे छिन जाइ
ऐसेहि करत बरस दिन बीतो थकित भए बिधि पाई

इसके बाद की ब्रह्मा की स्तुति (१२७-२८) भागवत से भिन्न है, वह ब्रह्मा की भावना से अधिक सूरदास की भावना को हमारे सामने रखती है।

भागवत के २३वें अध्याय की सामग्री की बहुत-सी वस्तुएँ सूरसागर के किसी भी लीलाप्रसंग में नहीं है, जैसे बलराम का चकित होना, ग्वाल-बाल और बछड़ों का गोपाल हो जाना। वास्तव में सारे अध्याय की सामग्री का एक अत्यंत छोटा भाग सूरसागर में आया है।

भागवत में ब्रह्मस्तुति अध्याय १४ छन्द १—४१
विषय है और उसमें सगुण, निर्गुण, ज्ञान, अज्ञान आदि प
मौलिकता-सहित विचार आये हैं। सूरदास ने इन सब वि
की उपेक्षा की है। केवल छन्द ३१-३४ की कुछ सामग्री को ले
उसे अपनी मौलिक भावनाओं से बढ़ा कर ब्रह्मा की स्तुि
रूप में रखा है।। सच तो यह है कि यहाँ भी वे भागवत
इंगित मात्र लेते हैं, सारी सामग्री उनकी है।

१६—कालियदमन-लीला

भागवत १०वें स्कंध में यह लीला १६, १७ अध्याय का वि
है। मुख्य लीला १६वें अध्याय में है, परन्तु कालिय के गरुड़
भय से यमुना में चले आने का कारण १७वें अध्याय में दि
गया है।

सूरसागर में दो नागलीलाएँ हैं। एक वर्णनात्मक छ
(१७७-१८१) में है, और दूसरी पदों में। विषय की दृष्टि
इन लीलाओं में कोई अंतर नहीं है, परन्तु भागवत अध्या
षोडश की सामग्री से इनका मिलान करने पर अंतर स्पष्ट हं
जाता है :

(१) सूरदास ने इस प्रसंग में एक मौलिक कल्पना की है
भागवत की कालियदमन लीला में कंस का कोई संबंध नहीं है।
सूरसागर में नारद जी की योजना की गई है। वे कंस के पास
जाते हैं। उससे कालिय की बात कहते हैं और यमुना के जल से
कमल मँगवाने के लिए कहते हैं—

नारद ऋषि नृप सों यह भाषत
वैहैं काल तुम्हारे प्रगटे काहे ते तुम उनको राखत
काली उरग रहो यमुना में तहँ ते कमल मँगावहु

दूत पठाव देहु ब्रज ऊपर नंदहि अति डरपावहुँ
यह सुनि के ब्रज लोग डरेंगे वाउ सुनिहै यह बात
पुहुप लेन जैहे नद ढोटा उगर करे तहाँ घात
यह सुनि कंस बहुत सुख पायो भली कही इह मोहि

कंस दूत को बुला कर नंद के नाम पत्र लिख देता है। अंतर्यामी कृष्ण यह बात जान लेते हैं और दूत के आने के पहले ही ग्वालों को वन भेज देते हैं। इधर दूत नंद के हाथ में पत्री देता है। उसे पढ़ कर नंद डर जाते हैं। गोपों को बुला कर कहते हैं अब क्या हो? कौन काली के फूल लाये? काली क्या ब्रज को छोड़ देगा? यशोदा कृष्ण को बाहर नहीं जाने देती। कृष्ण यशोदा से पूछते हैं। वह नंद के पास भेज देती हैं। कृष्ण की बातें सुन कर नंद का दुःख कुछ कम होता है।

कृष्ण वन को चले जाते हैं। श्रीदामा के साथ गेंद खेलते हैं।

(२) भागवत में कृष्ण आप ही कदंब पर चढ़ कर यमुना को काली से मुक्त करने के लिये नीचे दह में कूद पड़ते हैं—

"हे कुरुश्रेष्ठ! वहाँ घाम की तपन से गौवें और गोप बहुत ही प्यासे हुए। निकट शुद्ध जल न पाकर उन्होंने नाग के विष से दूषित कालीदह के जल को पी लिया। उस विषैले जल का स्पर्श करते ही होनहार से मोहित गौवों सहित वे गोप मर कर किनारे पर ही गिर पड़े (अध्याय १५, ४८-४९)। योगेश्वरों के ईश्वर कृष्ण ने अपने सेवकों को मरा हुआ देखकर अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टि से उनको उसी समय सजीव कर दिया (वही, ५०)। राजन्, सर्वशक्तिमान भगवान् ने काले सर्प के विष से यमुना के जल को दूषित हुआ देख कर उसको शुद्ध करने का विचार किया और नाग को वहाँ से निकाल दिया (अध्याय १६, १)। दुष्टों का दमन करने के लिए ही जिनका अवतार हुआ है उन कृष्ण-

चंद्र ने देखा कि प्रचण्ड विष का बड़ा ही वेग है, और, उस
कारण नदी का जल दूषित हो गया है। बस उस समय कृष्
चन्द्रजी एक बड़े ऊँचे किनारे पर लगे हुए कदम्ब के वृक्ष पर च
गए और वस्त्रसहित कर्धनी को ऊपर से कस कर ताल ठोक क
उस विषैले जल में फाँद पड़े (वही, ६)"।

सूर ने इस प्रसङ्ग में भी नई कल्पना की है। श्रीदामा औ
कृष्ण खेलते हैं। खेलते-खेलते कृष्ण, कमल का ध्यान कि
हुए, उसे यमुना के तट पर ले जाते हैं (आपुन जात कमल
काजहि सखा लिए सङ्ग ग्वालनि)। कृष्ण गेंद चलाते हैं
श्रीदामा अङ्ग बचाता है। गेंद कालीदह में जा पड़ती है
श्रीदामा फेंट पकड़ लेता है—गेंद दो। कृष्ण और श्रीदामा में चल
जाती है। अंत में कृष्ण फेंट छुड़ा कर कदम्ब पर चढ़ जाते हैं
लड़के ताली देकर हँसते हैं—कृष्ण भाग गए। श्रीदामा शिकायत
लेकर यशोदा के पास चलता है। कृष्ण कहते हैं—लौट आओ,
लो गेंद, और पीताम्बर फाँड़ में बाँध वे यमुना में कूद पड़ते हैं।

(३) भागवत में कृष्ण के कूदते ही झुण्ड में हलचल मच
जाती है और सपरिवार क्रोधित होकर विष उगलने लगता है।
कृष्ण की जल-क्रीड़ा से कुंड का जल चार सौ हाथ पृथ्वी पर
फैल जाता है। शब्द सुनकर काली जानता है कि शत्रु ने उसके
भवन पर चढ़ाई की और कृष्ण के निकट आता है। (वही, ६-८)
सूर में यह अंश इस प्रकार है—

अति कोमल तनु धर्‌यो कन्हाई
गए तहाँ जहाँ काली सोवत उरगनारि देखत अकुलाई
कह्यो कौन को बालक है तू बार-बार कहि भाग न जाई
छिनकहि में जरि भस्म होयगो जब देखै उठि जागि जँभाई
उरगनारि की बाणी सुनिके आप हँसे मन में मुसकाई
"मोकों कंस पठ्यो देखन तू याको अब देहि जगाई"

कहा कंत दिखरावत इनको एक फूँक ही में जरि जाई
पुनि पुनि कहत सूर के प्रभु को तू काहे न जात पराई
झिरकि कै नारि दै गारि गिरधारि तब पूछ पर लात दै अहि जगायो
उठ्यो अकुलाइ डरपाइ खगराइ को देखि बालक गर्व अति बढ़ायो
पूछ राखी चु चाँदि रिसनि काली काँपि देखै सब साँप औसान भूले
पूछ लीन्हों झटकि धरनि सो गहि पटक फू कह्यो लटकि करि क्रोध फूले

इस प्रकार प्रसंग में कोमलता का समावेश हो गया है।

(४) भागवत में सारी लीला जल के ऊपर होती है। ग्वाल-बाल नंद-यशोदा देखते हैं। सूरसागर में कृष्ण और काली का सारा युद्ध-प्रसंग जल के भीतर चलता है। ग्वाल-बाल और यशोदा समझते हैं कि कृष्ण डूब गये। तब कृष्ण अंत में काली पर कमल लादे निकलते हैं।

(५) भागवत स्कं० १०, अध्याय १६ (छंद ३१-५२) में नागपत्नियों की स्तुति है। सूरसागर में इसका अभाव है। केवल काली की स्तुति पर ही संतोष कर लिया गया है।

(६) भागवत में काली के नाचने और उसपर कमल लादने का प्रसंग नहीं है। यह सूर की उपज है।

(७) इस प्रसंग के बाद कृष्ण के कहने पर नंद गोपों के साथ कंस के पास कमल भेज देते हैं और कंस उन्हें किस प्रकार भय और चिंता से स्वीकार करता है, इसका सविस्तार वर्णन है। सूरसागर का यह प्रसंग भागवत में नहीं है।

इस प्रसंग में गोपी-गोप, नंद-यशोदा की वात्सल्य भावना का बड़ा सुन्दर चित्रण हो सका है। भागवत में भी इसका वर्णन है, परन्तु रसपूर्ण चित्रण नहीं है। यशोदा का अपशकुन, नंद का अपशकुन, कृष्ण के कालीदह में कूदने का समाचार आदि इस रस-स्थापन की सुन्दर भूमिका उपस्थित करते हैं।

हम देखते हैं कि इस प्रसंग (लीला) का मूल कार
सूर ने बदल दिया है और इसे कंस से संबंधित कर दिया

भागवत में दावानल-पानलीला के दो प्रसंग हैं, एक अ
१७ के अंतर्गत (छं० २०-२५) और दूसरा अध्याय उन्नी
(छं० १-१५) में। दोनों प्रसंगों में से किसी में दावानल का
कंस से स्थापित नहीं किया गया है। सूरसागर में उनका स
कंस से स्थापित किया गया है। कमल-पुष्प पाकर कंस ि
हो जाता है। वह दावानल को बुलाता है—

मयो बेहाल नँदलाल के ख्याल यह उरग तें बाँचि फिरि ब्रजहि
कह्यो दावानलहि "देखौं तेरे बलहि, भस्म करि ब्रजबालहि" कहि प
चल्यो रिसपाई तब धाय के ब्रजलोग बनसहित मैं जारि
नृपति के लै पान मन कियो अभिमान करत अनुमान चहुँ पास
वृन्दावन आदि ब्रज आदि गोकुल आदि आदि छनमाहि सब आहिर
चल्यो मग जात कहि बात इतरात अति सूर प्रभु सहित सँहार

शेष प्रसंग लगभग अध्याय १६ की भाँति है, परन्तु
सागर में दावानल ब्रज पर दौड़ता है और यशोदा आदि
चिन्ता दिखाने का अवसर कवि के हाथ में आ जाता है।

प्रसंग को अंत करते हुए सूरदास ने *मौलिकता का पुट*
पद में दे ही दिया है—

चकित देखि यह कहि नर नारी

धरणि अकास बराबरि ज्वाला झपटत लपटि करारी
नहिं बरख्यो नहिं छिरक्यो काहूँ कहुँ धौं गयो बिलाइ
अति आघात करत बन भीतर कैसो गयो बुझाइ
तृण की आगि बरत ही बुझि गई हँस हँस कहत गुपाल
सुनहु सूर यह करनि कहनि यह ऐसे प्रभु के ख्याल

सूरदास ने स्पष्टतः एक ही लीला को सूरसागर में रखा है। भागवत में दावानल प्राकृतिक व्याधि है, सूरसागर में अतिप्राकृत, कंस की सहायक दुष्ट शक्ति है। एक बार नष्ट हो जाने पर उसका पुनः प्रगट होना असंभव है।

२—लौकिक लीलाएँ

(१) चीरहरणलीला

चीरहरण की दो लीलाएँ सूरसागर में हैं—एक वर्णनात्मक छंद में (पृ० २००-२०२), दूसरी पदों में (१६६-२००)। दोनों का कथानक एक है। गोपियाँ रुद्र (गौरीपति) को पूजती हैं। सविता की प्रार्थना करती हैं। व्रत रखती हैं। वर के रूप में वह कृष्ण को पति रूप में पाना चाहती हैं। प्रत्येक दिन यमुना में स्नान करती हैं। एक दिन कृष्ण जो अंतर्यामी हैं, वहाँ आते हैं। गोपियाँ तट पर वस्त्र उतार कर नग्न नहा रही हैं। कृष्ण सोलह हजार (षटदश सहस) रूप धर कर प्रत्येक गोपी के पीछे पहुँच जाते हैं और उसकी पीठ मलते हैं। वह चकित होकर पीछे मुड़ती है तो कृष्ण को पाती है। वह उलाहना देती है, चिल्लाती-पुकारती है, परन्तु कृष्ण उसे अंक में भर ही लेते हैं। फिर वस्त्र लेकर भाग जाते हैं। नंद की दुहाई देने पर वस्त्र डाल देते हैं। गोपियाँ वस्त्र पहन कर यशोदा के पास जाती हैं और उलाहना देती हैं, परन्तु यशोदा उनका उलाहना सुनने के लिये तैयार नहीं। उसके कृष्ण तो अभी बच्चे हैं। गोपियाँ तरुणी हैं। यह छेड़ संभव ही कब है? गोपियाँ लज्जित होकर लौट आती हैं। फिर एक दिन वर्ष भर का व्रत समाप्त होता है। उस दिन कृष्ण गोपियों के वस्त्र उठा कर कदम्ब पर चढ़ जाते हैं और गोपियों को उनके पास नग्न होकर जाना पड़ता है। कृष्ण उनसे हाथ ऊपर उठवा कर नमस्कार लेते हैं और कपड़े देते

हैं। कहते हैं—अन शरत हुआ। मैं तुम्हारे साथ शरद रात को
रास रचूँगा।

इस प्रसंग का पूर्वार्द्ध भागवत में नहीं है। सूरदास की
कल्पना ने उसकी सृष्टि की है। भागवत में कृष्ण प्रत्येक गोपी
की पीठ नहीं मलते। उत्तरार्द्ध अधिकांश भागवत की कथा को ही
हमारे सामने रखता है, परन्तु सूरदास ने जो परिवर्तन किये हैं वे
द्रष्टव्य हैं—

(१) उन्होंने लिखा है कि कृष्ण प्रत्येक द्वार पर हैं (स
समाने ततु प्रति द्वारा। यह लीला रचि नंदकुमारा।)

(२) वार्तालाप के अंतर्गत भी कुछ परिवर्तन है, जैसे गोपि
कृष्ण से कहती हैं—"आमषण ले लो, वस्त्र दे दो" आदि।
सूचित करता है कि सूरदास कभी केवल अनुवाद नहीं करते

(३) भागवत में आर्यादेवी कात्यायिनी का व्रत है, सूरसा
में "गौरीपति" का व्रत रखा गया है।

(४) भागवत में कृष्ण बालकों के साथ हैं, सूरसागर में अ
हैं।

(५) वर्णनात्मक छंद में सूर ने बहुत कुछ अपनी ओर से
है, जिससे स्पष्ट है कि वे भागवत की कथाओं का सार
अपने ढंग पर स्वतंत्र रचना करते थे, अनुवाद नहीं—

प्रेमसहित युवती सब न्हाई। मन मन सविता विनय सु
मूँदहि नैन ध्यान उर धारे। नंदनंदन पति होय
रवि कर विनय शिवहिं मन दीन्हों। हृदय-भाव अवलोकन
त्रिपुरसदन त्रिपुरारि त्रिलोचन। गौरीपति पशुपति अघमं
गरल असन कहि भूषन धारी। जटाधरन गंगा शिर
... विनय यह माँगति तोसों। करहुँ कृपा हँसि के आपु

हम पावैं सुत यशुमति को पति। इहै देहु करि कृपा देव रति
नित्य नेम करि चलीं कुमारी। एक याम तन को हिय जारी
ब्रजललना कह्यो नीर अड़ाई। अति आतुरह्वै तट को धाई
जलतें निकसि तटनि सब आई। चीर अभूषन तहाँ न पाई
सकुचि गई जलभीतर धाई। देखि हँसत तरु चढ़े कन्हाई
बार बार युवती पछिताहीं। सब के वसन अभूषन नाहीं
ऐसो कौन सबै लै भाग्यो। लेतहु ताहि बिलम नहिं लाग्यो
माघ तुषार युवती अकुलाहीं। ह्याँ कहुँ नंदसुवन तौ नाहीं
हम जानी यह बात बनाई। अंबर हरि लै गए कन्हाई
हौं कहुँ श्याम विनय सुनि लीजे। अबर देहु कृपा करि जीजै
थर थर अंग कम्पति सुकुमारी। देखि श्याम नहिं सके सँभारी
एहि अंतर प्रभु बचन सुनाए। व्रत को फल दरशन सब पाए

भागवत (१०, २२) में यह सब कुछ नहीं है—

"एक दिन सब ब्रजबालाएँ यमुना के किनारे आईं और अन्य दिनों की भाँति किनारे पर सब कपड़े उतार कर जल के भीतर स्नान करने के लिए घुसीं। उन्होंने जल के भीतर कृष्ण की गुणावली गाते हुए भली भाँति प्रसन्नता-पूर्वक जलविहार किया॥७॥ योगेश्वरों के ईश्वर भगवान श्रीकृष्णचंद्र उनके उद्देश्य को जान कर उन्हें कर्म का फल देने के लिए अपने साथी गोपों के साथ उसी स्थान पर पहुँचे एवं उनके वस्त्रों को लेकर पास ही के एक कदम्ब पर चढ़ गये। हँसते हुए बालकों के साथ हँस रहे श्रीकृष्णचंद्र ने हँसते हुए कहा कि "ललनाओ! तुम यहाँ पर आकर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ, डरो नहीं। मैं तुमसे सत्य ही कह रहा हूँ, हँसी नहीं करता, क्योंकि तुम व्रत के कारण निर्बल और शिथिल हो रही हो। मैंने आज तक झूठ नहीं बोला, इस बात को मेरे ये सब साथी गोपगण भली भाँति जानते हैं।

सुन्दरियो ! एक-एक करके या साथ ही आकर तुम अपने दे लो ॥ ८, ९, १०, ११ ॥

(२) पनघटलीला

दानलीला की भाँति पनघटलीला (या जमुना-जल-भर लीला) भी सूर की मौलिक कल्पना है। भागवत में इस किंचित भी इंगित नहीं है। सारी लीला पदों में है।

ब्रज-युवतियाँ पानी भरने के लिए यमुना के घाट पर जाती हैं। वहाँ कृष्ण खड़े बंशी बजा रहे हैं। पानी भरना भूल कर उन्हें ही एकटक देखती रह जाती हैं—

हौं गई ही यमुन जल लेन माई हो साँवरे ऐ मोही
सुरङ्ग केसरि खौरि कुसुम की दाम अभिराम कठ कनक की दुलरी
झलकत पीतांबर की खोही। नान्ही नान्हीं बूँदन में ठाड़ो री बजावै
गावै मलार की मीठी तान मैं तो लाल की छवि नेकहु न जोही।
सूर श्याम मुरि मुसकानि छबीली अँखियन में रही तब न जानो हौं
को ही।

जब युवतियाँ इस डर से पनघट पर नहीं जातीं तो कृष्ण दूसरी ही चाल चलते हैं—

पनघट रोवेहि रहत कन्हाई
यमुना-जल कोउ भरन न पावत देखत ही फिर जाई
तबहिं श्याम इक बुद्धि उपाई आपुन रहे छुपाई
तब ठाड़े जे सखा संग के तिनको लिये बोलाई
बैठारे ग्वालन को द्रुमतर आपुन फिर फिर देखत
बड़ी बार भई कोऊ न आई सूर श्याम मन लेखत

युवति इक आवत देखी श्याम
द्रुम के ओट रहे हरि आपुन यमुनातट गई धाम

जल हलोरि गागरि भरि नागरि जब ही शीश उठायो
घर को चली जाइ ता पाछे शिरते घट ढरकायो
चतुर ग्वालि करि गह्यो श्याम को कनक लकुटिया पाई
औरनि सों कर रहे अचगरी मोसों लगत कन्हाई
गागरि ले हँसि देत ग्वालि कर रीतो घट नहिं लैहौं
सूर श्याम ह्याँ आनि देहु भरि तबहिं लकुट कर दैहौं
घट भरि दियो श्याम उठाइ
नेक तनु की सुधि न ताको चली ब्रज समुदाय
श्यामसुंदर नयन भीतर रहे आनि समाइ
जहाँ तहाँ भरि दृष्टि देखौं तहाँ तहाँ कन्हाइ
उतहि ते इक सखी आई कहति कहा भुलाइ
सूर अबहीं हँसत आई चली कहाँ गँवाइ
अब गई जल भरन अकेली अरी हौं श्याम मोहनी घाली री
नंदनन्दन मेरी दृष्टि परे आली फिरि चितवन उर शाली री
कहा री कहौं कछु कहत न आवै लगी मरम की भाली री
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हो विवश भई हौं कासों कहौं आली री

ह बात सुनकर यह सखी आतुर होकर यमुना से पानी ने चली जाती है। वहाँ कृष्ण को न देख कर व्याकुल होती है। त में उसकी विकलता देख कर कृष्ण आते हैं। उसे अंक में रते हैं (पृ० १०३, ४७)। जब वह लौटती है तो प्रेम में विमोर ो डगर छोड़ कर चलने लगती है। जो सखियाँ पानी रने जा रही हैं वे उससे इस विह्वलता का कारण पूछती हैं ४८, ४९)।

नेक न मनते टरत कन्हाई
यक ऐसेहिं छकि रहो श्यामरस तापर हृदि यह बात सुनाई
वाको सावधान करि पठयो चली आपु जल को अतुराई
मोर मुकुट पीताम्बर काछे देख्यो कुँवर नन्द को जाई

(३) दानलीला

भागवत, हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण आदि जिन में गोपालकृष्ण की लीलाएँ वर्णित हैं, उनमें "दानलीला" थ नहीं है। अतः स्पष्ट है कि यह सूरदास की सूझ है।

सूरसागर में ४ दानलीलाएँ हैं :

(१) एक दानलीला पृ० २५२-२५५ पर है। यह वर्णन और कथोपकथनात्मक है—

सुनि तमचुर को सोर घोष की आगरी
नवसत साजि सिंगार चली बन नागरी

नवसत साजि सिंगार अंग पाटंबर सोहै
एक तै एक बिचित्र रूप त्रिभुवन मन मोहै
इंदा बिंदा राधिका स्यामा कामा नारि
ललिता अरु चंद्रावली सखिन मध्य सुकुमारि
कोउ दूध कोउ दह्यो मह्यो लै चली सयानी
कोउ मटुकी कोउ माट भरी नवनीत मथानी
गृह गृह तै सब सुन्दरी जुरी जमुनातट आइ
सबहि हरष मन मैं कियो उठीं स्याम गुण गाइ
यह सुनि नंदकुमार सैन दै सखा बोलाए
मन हरषित भए आपु आइ तब ग्वाल बुलाए
यह कहिकै तब साँवरे रामै द्रुमनि चढ़ाइ
और सखा कछु संग लै रोकि रहे मग आइ
एक सखी अवलोकत ही सब सखी बोलाई
यहि बन मैं इक बार लूटि हम लई कन्हाई
तनक फेर फिरि आइए अपने मुखहि बिचार
मत भगरौ सुनि होइगो गोकुल मैं उपहास

उलटि चली तब सखी तहाँ कोउ जान न पावै
रोकि रहे सब सखा और बातनि बिरमावै
सुबल सखा तब यह कह्यो तुम ग्वालिनि हरि योग
कैसे बातें दुरति हौ तुम, उनके संयोग
किनहुँ भृंग कोउ बेनु किनहु बनपत्र बजावै
छाँड़ि छाँड़ि द्रुम डार कूदि धरनी धँसि धावै
सखिन मध्य इत राधिका सखा मध्य बलबीर
झगरो ठान्यो दान को कालिंदी के तीर
कहत नंदलाडिले

दै नारनि दधिदान कान्ह ठाढ़े वृन्दावन
और सखा हरि संग वच्छ चारत अरु गोधन
वै बड़े नंद के लाड़िले तुम वृषभानुकुमारी
दह्यो मह्यो के कारने कतहि बढ़ावति रारि
कहत ब्रजनागरीं

स प्रकार यह कथोपकथन दूर तक चलता है।

दूसरी दानलीला सूरसागर पृ० २३२ के वर्णनात्मक छंद भक्तन के सुखदायक स्याम" से शुरू होती है और पृ० २३५ क चलती है। इस लीला में दो छंदों का प्रयोग हुआ है—

गोरस लै निकसीं ब्रजबाला
तहँ तिनि देखे मदनगोपाला
× × ×
देखि सबनि रीझे बनवारी
तब मन में इक बुद्धि बिचारी
अब दधिदान रचौं इक लीला
युवतिन संग करौं रसलीला
सूर श्याम सँग सखन बोलायो
यह लीला कहि सुख उपजायो

सुनत हँसी सुनि छाँड़ि दान दही को लाग्यो
निशिदिन मथुरा दधि बेचै श्याम दान अब माँग्यो
प्रात होत उठि कान्ह टेरि सब सखनि बोलाए
तेइ तेइ लीने साथ मिले जो प्रकृति बनाए
उगरि गए बनजात ही गह्यो जाइ बन घाट
मेंड़ मेंड़ तरु के लगे ठाढ़ि ठगन की ठाट

तीसरी दानलीला पदों में है (पृ० ६३७-७४२)

नँदनन्दन इक बुद्धि उपाई
जे जे सखा प्रकृति के जाने ते सब लए बोलाई
सुबल सुदामा श्रीदामा मिलि और महरसुत आये
जो कछु मंत्र हृदय हरि कीन्हौ ग्वालन प्रकट सुनाये
ब्रजयुवती नितप्रति दधि बेचन बनि-बनि मथुरा जाति
राधा चंद्रावलि ललितादिक बहु तरुणी इक भाँति
कालिंदी तट कालि प्रात ही द्रुम चढ़ि रहौ लुकाइ
गोरस लै जबहीं सब आवैं मारग रोकहु जाइ
भली बुद्धि इक रची कन्हाई सखनि कह्यो सुख पाइ
सूरदास प्रभु प्रीति हृदय की सब मन गए जनाइ

अंत इस प्रकार है। गोपियों के उलाहने पर यशो
कहती हैं—

कहा करौं तुम बात कहूँ की कहूँ लगावति
तरुणिन इहै सुहात मोहि कैसे यह भावति
बहुत उरहनो मोहि दियो अब जनि ऐसो देहु
तुम तरुणी हरि तरुण नाहिं मन अपने सुधि लेहु
निरउत्तर भई ग्वालि बहुरि कहि कछू न आयो
मन उपज्यो यह लाज तुम हरिसों चित लायो
लीला ललित गोपाल की कहत सुनत सुख पाइ
दानचरित सुख देखि कै सूरदास बलि जाइ

चौथी दानलीला पृ० २५४-५५ पर इस प्रकार है—

जबहिं कान्ह यह बात सुनाई

इस लीला में दान के लिये ये तर्क-वितर्क उपस्थित नहीं किये गये हैं जो पिछली तीन लीलाओं में हैं। यहाँ कृष्ण युवतियों से अपने अवतार की बात कहते हैं और कहते हैं कि वे शीघ्र ही ब्रज को छोड़ कर मथुरा चले जायेंगे। इस धमकी को सुनकर—

(यह धुनि सुनि) तरुणी बिकलानी
तन मन धन इन पर सब बारहु
जोवनदान देहु रिस टारहु

× × ×

यह निश्चित कर

सबनि धरयो दधि-माखन आगे। लेहु सबै अब जितहो माँगै
तुम रिस करत देखि दुख पावैं। याते बारहि बार जिमावैं
तनु जोवन धन अर्पन कीन्हो। मन को मन हरि को सुख दीन्हो
सुभग पात दोना लिये हाथनि। बैठे सखा श्याम एक साथनि
मोहन खात खवावत नारी। माँगि लेत दधि गिरवरधारी

स्पष्ट है कि पिछली तीन लीलाओं में इस लीला का रूप भिन्न है, न तर्क चलते हैं, न जोवनदान के लिये हाथापाई होती है। युवतियाँ सहज ही दान देना स्वीकार कर लेती हैं। धमकी काम कर जाती है।

पहली तीन लीलाओं की कथा इतनी है। कृष्ण सखाओं से सलाह करते हैं। सब पेड़ों पर चढ़ जाते हैं। जब गोपियाँ सिर पर दधिभाजन लिये निकलती हैं तो कूद पड़ते हैं और "दान" माँगते हैं। गोपियाँ तर्क करती हैं—कैसा दान, पहले कब लगता है? ग्वाल-बाल तर्क करते हैं। संभाषण चलता है।

(४) रास

रास का वर्णन भागवत एकोनत्रिंश अध्याय से त्र्यं
अध्याय तक चलता है इन पाँच अध्यायों की सामग्री के
पर "अष्टछाप" के कवियों ने "रासपंचाध्यायी" ग्रंथों की
की है। सूरसागर में रासलीला दो बार कही गई है। इ
एक लीला का कुछ अंश वर्णनात्मक छन्द में है, एक
गीतात्मक है।

एक रासलीला इस प्रकार के छन्द में है—

शरद सोहाई आई राति
दह दिसि फूलि रही बन जाति
देखि श्याम अति सुख भयो:
शशिगो मंडित यमुनाकूल
बरषत विटप सदा फल-फूल
त्रिबिध पवन दुख दवन है
श्री राधा-रवन बजायो बैन
सुनि ध्वनि गोपिन उपज्यो मैन
जहाँ तहाँ ते उठि चलीं
चलत न काहुहि कियो जनाव
हरि प्यारी सौं बाढ़्यो भाव
रास रसिक गुण गाइहो

इस लीला में "रास रसिक गुण गाइहो" प्रत्येक छन्
अन्त में आता है। स्पष्ट है कि इस लीला का रूप गीतात्मक
वर्णनात्मक नहीं। यह लीला सूरसागर पृ० ३६० से पृ०
तक चलती है। भागवत की कथा से मिलान करने पर यह
है कि इसमें २९वें अध्याय की ही कथा है अन्य अध्यायों
नहीं; इसमें कृष्ण अन्तर्धान नहीं होते, अतः अन्य अध्यायों
सामग्री इसमें नहीं आती।

दूसरी लीला जो पदों और वर्णनात्मक छन्द में है सूरसागर पृ० ३३८ से पृ० ३६० तक चलती है। इसमें अध्याय २६, ३०, ३२, ३३ लगभग सभी अध्यायों की सामग्री है, केवल ३१वें अध्याय की सामग्री का अभाव है। विषय-विभाजन और तुलना इस प्रकार है

२६वें अध्याय की सामग्री	वेणुवादन गोपियों का आना, कृष्ण-गोपी-संवाद, रास, गर्वोदय, कृष्ण का राधा को लेकर अंतर्धान हो जाना।
३०वें अध्याय की सामग्री	गोपियों का लताओं आदि से पूछना, चरण-चिह्नों को देखना और उससे अनुमानित करना। राधा का मिलना उसकी दुःख कथा।
३१वें " "	गोपिका गीत का सूरसागर में 'अभाव है'
३२वें " "	कृष्ण का प्रगट होना। (भागवत में कृष्ण ने गोपियों को जो उपदेश दिया है उससे सारा अध्याय भरा है। यह उपदेश छन्द २ से लेकर छन्द ३२ तक विषय है। सूरसागर में छंद १, २ की ही सामग्री है अर्थात् प्रगट होने भर का इंगित मात्र है।)
३३वें अध्याय की सामग्री	रासनृत्य (भागवत में यह अत्यन्त विस्तार से है। सूर में विशेष विस्तार नहीं है) जल-क्रीड़ा निकुञ्ज-विहार परिक्षित के प्रश्न और शुकदेव के उत्तर सूरसागर में नहीं हैं।

भागवत में रास की रात छः महीने की हो गई है, सारा तारागण सहित चन्द्रमा लीला ही देखने रह गये थे (छंद ३३) परन्तु सूरसागर में इस प्रकार का कोई निर्देश नहीं है। संभवतः सूरदास शरद्पूर्णिमा की ही एक रात में रास की योजना करते हैं। गोपी-विरहावस्था का वर्णन कुछ वर्णनात्मक है।

परन्तु इस रास के प्रसङ्ग पर भागवतकार की तरह सूरदास ने भी आध्यात्मिक रूपक का आरोप किया है :

(१) भागवतकार ने वंशी पर आध्यात्मिकता का आरोप नहीं किया। वहाँ व्रजनारियाँ "कामोद्दीपक गान" सुनते ही चल पड़ीं (२६, ४). यह स्पष्ट उल्लेख है। सूर ने वंशी के अलौकिक प्रभाव के संबन्ध में अनेक पद लिख कर उस पर स्पष्ट रूप से आध्यात्मिक आवाहन का आरोप किया है। नंददास ने स्पष्ट ही उसे "योगमाया" कहा है। सूर यद्यपि ऐसा नहीं कहते, परन्तु अर्थ यही है।

(२) कृष्ण गोपियों को पातिव्रतधर्म का उपदेश देते हैं, परन्तु गोपियों का अपने में अनन्य भाव जान कर उनके प्रसन्न करने के लिये रास करते हैं। गोपियाँ सब से प्रिय संबंध को छोड़ कर कृष्ण के पास गईं—यह भी आध्यात्मिक अर्थ रखता है।

(३) एक ही कृष्ण अनेक होकर प्रत्येक गोपी के साथ रास रचते हैं, इसमें एक ही परमात्मा के अनेक जीवात्माओं के सन्निकट होने का आध्यात्मिक अर्थ है।

परन्तु इनके अतिरिक्त भागवत कथित रासपंचाध्यायी में आध्यात्मिक तत्त्व अधिक स्पष्ट नहीं यद्यपि गर्व करने पर कृष्ण का ध्यान और दीनता प्रगट होने पर उपस्थित हो जाने में आध्यात्मिकता का पुट अवश्य है और इस प्रसङ्ग के आध्यात्मिक अर्थ किए गए हैं। परन्तु सूरदास ने इन आध्यात्मिक संदेशों को अधिक

ष्ट रूप से रखा है और साथ ही नए रूपकों की भी सृष्टि
ो है।

(अ) यह रास आध्यात्मिक और अलौकिक है। यह अगम
। इसकी स्थिति भाव में है और भाव में ही इसका आनंद
लया जा सकता है—

रास रस रीति नहिं बरनि आवै

कहाँ वैसी बुद्धि कहाँ वह मन लहौ, कहाँ इह चित्त भ्रम भुलावै
जो कहौं कौन मने अगम जो कृपा बिन नहीं या रसहि पावै
भाव सों भजै बिन भाव में ए नहीं भाव ही माँहि भाव यह बसावै
यहै निज मत्र यह ज्ञान यह ध्यान है दरस दम्पति भजन सार गाऊँ
इहै मांग्यो बार-बार प्रभु सूरके नैन दोउ रहैं अरु नित्य नर देह पाऊँ

(आ) रास गन्धर्व-विवाह है। इसमें जीवात्मा परमात्मा से
थायी सम्बंध स्थापित करती है। इस प्रकार गोपियों की
रकीयता दूर की गई है और रास को अधिक उच्च भूमि पर
उठाया गया है—

जाको व्यास बरनत रास
है गंधर्व विवाह चित्त दै सुनौ विविध विलास

(इ) *रास के आरम्भ में सूरदास राधाकृष्ण का विवाह करा*
देते हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इससे आध्यात्मिक अर्थ
किस प्रकार पुष्ट हुए परन्तु मौलिकता स्पष्ट है। रास के प्रकरण
में इसका उल्लेख न करना सूरदास के रासवर्णन की मौलिकता
के प्रति अवज्ञा दिखाना होगा। सूरसागर पृ० ३४८-३४६ में
इस गंधर्व-विवाह का वर्णन है।

५—राधा के मान

सूरसागर में राधा के मान के ४ प्रसंग आते हैं, परन्तु उनमें से
प्रत्येक में कोई नवीनता अवश्य है। वे पुनरुक्ति मात्र नहीं हैं।

पहले मान का परिचय हमें रास के बाद होता है। रास की रात के बाद राधा शृङ्गार करके कृष्ण की प्रतीक्षा में बैठी है। कृष्ण आते हैं।

रिय निरखत प्यारी हँसि दीन्हों
रीझे श्याम अङ्ग-अङ्ग निरखत हँसि नागरि उरलीन्हों
आलिङ्गन दे अधर दशन खँडि कर गहि चिबुक उठावत
नासा सों नासा लै जोरत नैन नैन परसावत
यहि अंतर प्यारी उर निरख्यो झझकि गई तब प्यारी
सूर श्याम मोको दिखरावत उर लाए धरि प्यारी

राधा कृष्ण को उलाहना देती है कि उन्होंने अपने हृदय में दूसरी युवती को स्थान दिया है। कृष्ण चकित हो जाते हैं—

सुनत श्याम चकृत भए बानी
प्यारी पियमुख देखि कछुक हँसि कछुक हृदय रिस मानी
नागरि हँसति हँसति उर छाया वासर अति महरानी
अधर कंप रिस भौंह मरोर्यो मन ही मन गहरानी
इकटक चितै रही प्रतिबिंबहि सौतिसाल जिय जानी
सूरदास प्रभु तुम बड़भागी बड़भागिनि जेहि आनी

कृष्ण राधा को मनाते हैं परन्तु वह उन्हें दूर ही रहने को कहती है (मोहि छुवो जिमि दूरी रहौ जू। जाको हृदय लगाइ लई है ताकी बाँह गहौ जू ३६५, ६७)। बात केवल प्रतिबिंब की है—

मान करयो त्रिय बिनु अपराधहिं
तनु दाहति बिन काज आपनो कहत डरत जिय बादहि
कहा रही मुख मूँद मानिनी मोहि चूक कछु नाहीं
झझकि रही क्यों चतुर नागरी देखि अपनी छाहीं
३६५, ७१

कृष्ण वृन्दावन लौट जाते हैं। रास्ते में दूती मिलती है। श्याम को कुंज में बैठा आती है। उन्हें आश्वासन दिलाती है कि राधा को

अभी मना लाती हूँ। (अबहों लै आवती हौं ताको इहै भई कछु बहुत दई। करि आई हरिकों परतिज्ञा कहा कहै वृषभानु जाई) इसके बाद दूतिका-राधा-प्रसंग चलता है। उधर कृष्ण की यह दशा है—

श्याम नारि के विरह भरे
कबहुँक बैठत कुंज द्रुमनतर कबहुँक रहत खरे
कबहुँक तनु की सुरति बिसारत कबहुँक तेइ गुण गुनि गुनि गावत
कहुँ मुकुट कहुँ मुरलि रही गिरि कहुँ कटि पीत पिछौरी
सूर श्याम ऐसी गति भीतर आई दूतिका दौरी

कि दूतिका आकर राधा के आने का संवाद कहती है (श्याम-भुजा गहि दूतिका कहि आतुर बानी। काहे को कहरात हौं मैं राधा आनी), राधा-कृष्ण का मिलन होता है।

दूसरे मान का कारण दूसरा है। कृष्ण दूसरी रात अन्य युवती के यहाँ बिता कर आये हैं—

अनतहि रैनि रहे कहुँ श्याम। भोर भए आए निज धाम
नागरि सहज रही मन माहीं। नदसुवन निशि अनत न जाहीं
मदनसदन की मेरे गेह। हिरदय है प्रिय इहै सनेह
आये श्याम रही मुख हेरि। मन मन करन लगी अवसेरि
रतिरस चिन्ह नारि के बानि। सूर हँसी राधा पहिचानी
(३७८, ८६)

इस समय राधा खंडिता है। वह प्रिय के अंगों पर नखक्षत आदि देखती है। इस बार राधा व्यंग का आश्रय लेती है (देखिये पृ० ३७८-७६)। अंत में व्रजनारियाँ आ जाती हैं। राधा कृष्ण के अंग सैन से युवतियों को दिखाती है, कृष्ण सकुचा जाते हैं, नेत्र मूँद लेते हैं (३८०,१६-१७)। कृष्ण राधा से डर कर लौट आते हैं। राधा मान करने बैठ जाती है। श्याम दूती भेजते हैं (दूती

दई श्याम पठाई ३८१)। फिर दूतीप्रसंग चलता है। अब वे
बार कृष्ण को स्वयं आकर मनाना पड़ता है। जब राधा क
मानमोचन हो जाता है तो कृष्ण उन्हें कुंज में मिलने को सं
देकर चले जाते हैं। कुंज में राधाकृष्ण का मिलन होता है।
तीसरा मानप्रसंग एक नई योजना के साथ आरम्भ होता है—

सखियन सँग लै राधिका निकसी वृज खोरी
चली यमुन अस्नान को प्रातहि उठि गोरी
नन्दसुवन जा गृह बसे तेहि बोलन आई
जाइ भई द्वारे खरी तब कढ़े कन्हाई
औचक भेंट भई तहाँ चकृत भए दोऊ
ये इतते वे उतहि तें नहिं जानत कोऊ
फिरी सदन को नागरी सखि निरखत ठाढ़ी
स्नानदान की सुधि गई अति रिस तनु बाढ़ी

श्याम रहे मुरझाई कै ठग मूरी खाई
ठाढ़े श्याम जहँ के तहँ रहे सखियन समुझाई
इतन हो कैहे गए गहि बाँह लै आई
सूर प्रभु को ले तहाँ राधा दिखलाई

राधहिं श्याम देखी आइ
महामान दृढ़ाय बैठी चितै कापै जाइ
रिसहि रिस भई मगन सुन्दरी श्याम अति अकुलात
चकित ह्वै छकि रहे ठाढ़े कहि न आवै बात
देखि व्याकुल नदनंदन सखी करति विचार
सूर प्रभु दोउ मिलैं जैसे करो सोइ उपचार

इस बार सखी मानिनी को मनाती है। उसको असफल देखक
कृष्ण एक और सखी को भेजते हैं (और सखी श्याम पठ
३२)। वह प्रकृति के उद्दीपक वर्णन करके राधा को कृष्ण

पास चलने का आग्रह करती है परन्तु राधा मौन है। रात बीत जाती है। कृष्ण कुञ्ज के द्वार पर अपनी मुरली बजाते हैं। अंत में हार कर सखी कृष्ण के पास जाकर मनाने को कहती है (कहत स्याम सो जाइ मनावौ मेरे कहे न मानै जू ४०७, ५६)। कृष्ण विरह से आकुल हो जाते हैं परन्तु सखी के उद्बोधन से तैयार होते हैं। स्वयं दूतीरूप धारण करते हैं—

तब हरि रच्यौ दूती रूप
गए जहँ मानिनी राधा त्रिया स्वांग अनूप
जाइ बैठे कहत सुन्न यह तू इहाँ बन स्याम
मैं सकुचि तहँ गई नाहीं फिरी कहि पति काम
सहज बातैं कहत मानो अब भई कछु और
तू इहाँ वै वहाँ बैठे रहत एहि ठौर

परन्तु राधा पहचान जाती है (तब ही सूर निरखि नैनन भरि आयो उघरि लाल ललिताधर ६६)। वह कहती है—'यह चतुराई जानती हूँ' और फिर मान धारण कर लेती है। कृष्ण पछता कर लौट आते हैं और दूती को भेजते हैं। राधाकृष्णदास के संस्करण में इस मान का मोचन नहीं है।

चौथा मानप्रसंग वर्णनात्मक है (४०६-४१२)। यहाँ कृष्ण स्वयं ही दूती का रूप धर कर राधा को मानते हैं परन्तु नवीनता की दृष्टि से इसकी सामग्री भी द्रष्टव्य है। इस मान के अंत में कृष्ण राधा के सामने मणि रख देते हैं। इसमें युगल दम्पति की छाया पड़ती है। राधा मुसकरा जाती है। मान टूट गया। कृष्ण उसे अपने हाथ से पान देते हैं और राधा कहती है कि कुञ्ज में चलो, मैं पीछे आई। अन्य मानप्रसंगों की भाँति इस मान-लीला के बाद भी मिलनकेलि में समाप्ति होती है।

मान के सम्बन्ध में सूरदास का दृष्टिकोण इस चौथे प्रसंग की अंतिम पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है—

विविध विलास-कला रस की विधि उभै अंग परवीनो
अविदित मान मान तजि भामिनि मनमोहन सुख दीनो
राधा-कृष्ण-केलि कौतूहल स्रवण सुनै जे गावैं
तिनके सदा समीप स्याम कितहीं आनंद बढ़ावैं
कबहुँ न जाइ जठर पावक जिहि कों यह लीला भावै
जीवनमुक्त सूर सो जग में अत परम पद पावै

६—खंडिता या कृष्ण बहुनायकत्व लीला

भागवत, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और गीतगोविन्दम् में न रा को खंडिता दिखाया गया है, न गोपियों को। "खंडिता" सूर व सूझ है। यह अवश्य है कि अन्य ग्रंथों में (जैसे भागवत में गोपियों के प्रति कृष्ण की आसक्ति दिखाकर उनपर "बहुनायकत्व" का आरोप किया गया है और इस प्रकार आध्यात्मिक अर्थ क सृष्टि की गई है—एक ही ब्रह्म एक ही समय अनेक जीवात्मा में निवास करता है—यह रूपक भागवतकार के सन्मुख है। सूरदास ने खंडिताओं की कल्पना करके आध्यात्मिक अर्थ को स्पष्ट करने की चेष्टा की है, यद्यपि उनकी इस कल्पना ने आध्यात्मिक अर्थों को दबा दिया है—

नाना रँग उपजावत स्याम। कोउ रीझति कोउ खीझति दाम
काहू के निशि बसत बनाई। काहू सुख छुवै आवत बाई
बहुनायक ह्वै विलसत आर। ताको शिव नहिं पावहि बार
ताको ब्रजनारी पति जानैं। कोउ आदर कोउ अपमानै
काहू सों कहि आवत साँझ। रहत और नागरि घर माँझ
कबहुँ रैनि सब संग बिहात। सुनहु सूर ऐसे नँदतात

अब युवतिन सों प्रकटे श्याम

अरस परस सब दिन यह आनी हरि सुन्धे सबहिन के धाम
जा दिन जाके भवन न आवत सो मन में यह करति विचार
आजु गए औरहि काहू को रिस पावति कहि बड़े लबार
यह लीला हरि के मन भावति खंडित वचन कहत सुख होत
सांझ बोल दै जात सूर प्रभु ताके आवत होत उदोत

ृष्ण ललिता को वचन दे जाते हैं, रहते शीला के घर हैं। रात
र ललिता प्रतीक्षा करती है। प्रातः कृष्ण ललिता के घर आते
(३७२-७३) ललिता के घर से लौट रहे हैं कि चन्द्रावली मिलती
। उससे वादा करते हैं कि आज तुम्हारे यहाँ रहेंगे। जाते
ुषमा के घर हैं। उधर चन्द्रावली उनका मार्ग देखती रहती है।
ोर होने पर श्याम चन्द्रावली के घर आते हैं (३७३-३७८)।

एक दिन सुबह होते हुए कृष्ण राधा के घर आते हैं। कृष्ण
ा अपने घर रहेंगे या मेरे घर, राधा यह समझती है। उनका
मुख देख कर रतिचिह्न पहचान कर, राधा कुण्ठित हो जाती
है। अंत में राधा मान करती है (३७८-८१)। मानमोचन के बाद
कुञ्ज में केलि चलती है (३८१-८८)।

लौटते समय कृष्ण सुषमा को उसके महलद्वार पर खड़ा देख
लेते हैं और ठिठुकते, सकुचते उसके यहाँ पहुँचते हैं (३८८-३९०)।
सखियाँ सुनती हैं कि कृष्ण सुषमा के घर आये हैं तो वहाँ दौड़
आती हैं। उधर राधा जब कृष्ण की रात-केलि के बाद घर लौटती
है तो उसके घर चन्द्रावली पहुँचती है। पहचान जाती है।
कहती है—

आजु अँग शोभा कुछ औरै हरिसँग रैनि महाई हो
अब तौ नहीं दुराव रह्यो कछु कहो साँच हम आगे हो
अधर दशन छत उरननि नखछत पीक पलक दोउ पागे हो

हम जानी तुम कही प्रकट करि श्याम संग मुन माने।
मुनहु सूर हम सखी परस्पर क्यों न रैनि-यश गाने।
राधा कहती है—"कहाँ ?" यात यनाती है, परन्तु सरि
उसकी छवि पर मोहती हैं अन्त में राधा स्वीकार कर
(३६०-६३)।

उधर कृष्ण कामा के घर रहते हैं, सुबह वृन्दा के घर
हैं। कृष्ण मनाते हैं परन्तु उनके स्पर्श से वृन्दा और भी
जाती है, मान करती है, पीठ देकर बैठ जाती है। कृष्ण
समझी-बूझी एक सखी के पास जाते हैं, उससे कथा कहते
वृन्दा को मनाती है। इधर दूती मना रही है, उधर कृ
दूती को साथ लेकर स्त्री वेश बना कर आते हैं और ओट
होकर बातें सुनते हैं। अवसर पाकर प्रगट होते हैं। यु
मान टूटता है (३६३-६६)।

वृन्दा के यहाँ रात बिता कर कृष्ण अपने घर लौटते
नंद को द्वार पर खड़ा देखते हैं तो सकुचा कर प्रमदा के
जाते हैं। वह पूछती है—आँखें लाल हैं, रात कहाँ रहे हो
कर कृष्ण उसे रात में आने का वचन देकर चल देते हैं
तत्परता से तैयारी करती। कृष्ण नहीं आते। कुमुदा के
जाते हैं। उसे रति-सुख देते हैं। उधर प्रमदा के पास
आती है और उसके उदास रहने का कारण पूछती है।
सखी से शिकायत कर रही है कि कृष्ण द्वार पर खड़े
पड़ते हैं। सैन देकर सखी को बुलाते हैं, कहते हैं, तू ते
इसने मान किया है, इसे मनाना है। कृष्ण को विनय प
नहीं मानती तो वे एक चमत्कार करते हैं—प्रमदा के
ऐसा विचार होता है कि कृष्ण यहाँ नहीं हैं, यमुना च
चलूँ। वहाँ कृष्ण पाँच वर्ष के बालक के रूप में सामने
कहते हैं—श्याम ने भेजा है, बुलाया है। प्रमदा प्रसन्न

। सोचती है यह अच्छा रहा, इसे भवन ले चलूँ। एकांत में
त्र बात विधि से पूछूँगी। एकांत होते ही कृष्ण तरुण का रूप
र लेते हैं और कुचों पर हाथ धर देते हैं। प्रमदा चतुराई समझ
गती है। उसका मान स्खलित हो जाता है। सुबह को सखी आकर
कहती है—यह बात समझ गई ? प्रमदा उससे कह देती है—
यमुना गई थी, मार्ग में एक बच्चा मिला आदि। सखी हँस कर
अपने घर जाती है। उधर कृष्ण राधा के घर पहुँचते हैं।
राधा सब देखती है। सब समझती है, परन्तु प्रगट नहीं करती।
फिर शपथ करवाती है कि कहीं नहीं जायेंगे—

श्याम सौंह कुच परस कियो

नंदसदन ते अबहीं आवत और त्रियन को नेम लियो
ऐसी शपथ करी काहे को जो कछु आज करी सो करी
अबजु कालि ते अनत सिधारो तब जानौगे तुमहि हरी

कृष्ण शपथ करते हैं। खंडिता-प्रसंग की समाप्ति इस प्रकार
होती है।

× × ×

अब न जान दइ देउँ पियारे जब आये तब भाग
वा दिन ते वृषभानु नंदिनी अनत जान नहि दीन्हें
सूरदास प्रभु प्रीति पुरातन यहि विधि रसवश कीन्हें

(३६६—४००)

इन खंडिता प्रसंगों में अंतर्हित आध्यात्मिक संकेत को सूर
ने एक छंद में इस प्रकार लिखा है—

राधिका गेह हरि देह वासी। और त्रिय भवन घर तनु प्रकाशी
ब्रह्म पूरण एक द्वितिय नहिं कोऊ। राधिका सबै हरि सबै कोऊ
दीप से दीप जैसे उजारी। तैसो ही ब्रह्म घर-घर विहारी

खंडिता बचन हित यह उपाई। कबहुँ कहुँ जात कहुँ नहि क्यों
बनम को सफल हरि इहै पाई। नारि रस बचन श्रवरन सुनाई
सुर प्रभु अनत ही गमन कीन्हो। तहाँ नहि गए बहुँ बचन दीन्हों

(३७१)

वास्तव में एक पूर्ण ब्रह्म के सिवा अन्य की उपस्थिति है ही नहीं। राधा और जीवात्माएँ सब उसी पूर्ण परब्रह्म से प्रकट हुई हैं। एक दीप से जैसे अनेक दीपक जल जाते हैं वैसे ही परमात्मा जीवात्माओं के रूप में घट-घट में विराजमान है। जीवात्मा "अंश" नहीं है, परमात्मा ही है। इस प्रकार प्रत्येक जीवात्मा राधा है, प्रत्येक हरि है, क्योंकि राधा-हरि एक ही हैं। ब्रह्म कहीं आता-जाता नहीं। तात्पर्य, वह निर्गुण निष्कर्म है; केवल भक्तों का उलाहना सुनने के लिए "खंडित लीला" करता है, किसी को "प्राप्त" होता है, किसी को "वंचित" रखता है। वैसे न उसे कोई प्राप्त करता है, न कोई उससे वंचित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि खंडिता-प्रसंग में सूरदास राधा, चंद्रावली, वृन्दा, कामा, प्रमदा, कुमुदा, ललिता, शीला और सुषमा को विशिष्ट रूप से खंडिता दिखाया है। इन सब प्रसंगों में मूल भावना एक होते हुए भी परिस्थितियों का अंतर रखा गया है, विशेषकर मानमोचन के प्रसंग में।

७—हिंडोललीला

अन्य प्रसंगों की भाँति हिंडोल-लीला भी सूरदास की कल्पना है (४१२-४१६)। राधा और गोपबालाएँ तीज के अवसर पर कृष्ण के साथ झूलने की साध रखती हैं। राधा-कृष्ण झूलते हैं, ललिता-विशाखा आदि झुलाती हैं। परन्तु राधा ही नहीं, कृ

ललनाओं को भी अवसर मिलता है। कृष्ण बारी-बारी से सब के साथ भूलते हैं।

इस लीला का धार्मिक पक्ष सूरदास ने कई प्रकार से स्वयम् उद्घाटित किया है—

(१) कृष्ण के लिए "त्रिभुवनपति", "श्रीपति" आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है और उनकी आज्ञा से विश्वकर्मा हिंडोला बनाते हैं—

सुनि विनय श्रीपति बिहँसि देखे विश्वकर्मा श्रुतिधारि
खचि खंभ कंचन के रचि-रचि राजति मरुवा मयारि
पटुली लगे नगनाग बहुरंग बनी डाँडी चारि
भँवरा भवें भजि केलि भूले नागर नागरि नार (४१३)।

(२) देवता इस लीला को देखते हैं—

तेहि समय सकुच मनोज की छवि जक्यो धनुशर डारि
अमर विमानन सुमन बरषत हरषि सुरसँग नारि
मोहे सुरगण गंधर्व किन्नर रहे लोक बिसारि
मुनि सूर श्याम सुजान सुंदर सबन के हितकारि (वही)

सूर प्रभु को संग को सुख बरणि का पै जाइ
अमर वर्षत सुमन अंबर विविध अस्तुति गाइ (४१५)

(३) सूर अपना दृष्टिकोण स्वयं स्पष्ट कर देते हैं—

कहत मन इहै बांछा भए न बन द्रुम डार
देह धरि प्रभु सूर विलसत ब्रह्म पूरण सार

(४) यह लीला नित्य है, गोलोक की लीला का प्रतिबिंब है—

तैसिये यमुना सुभग जहँ रच्यो रँग हिंडोर
तैसिये ब्रजवधू बनि हरि चित्त लोचन चोर
तैसो वृन्दा विपिन घन घन कुंज-द्वार विहार
विपुल गोपी विपुल बनरइ रवन नंदकुमार

नित्य लीला नित्य आनंद नित्य मंगल गान
सूर सुर मुनि मुखन अस्तुति धन्य गोपी कान्ह

८—बसंतलीला, फागुलीला, होलीलीला ४३०, ४

उत्कृष्ट काव्यकला, तन्मयता और भक्तिकाव्य की दृष्टि
ये लीलाएँ सूरसागर की सब लीलाओं में श्रेष्ठ हैं। इनमें
भक्त और गायक समान रूप से सफल हुआ है। अन्य लील
में रतिभाव की प्रधानता ने कवि के लीलागान में बाधा डाली।
सूरदास स्थान स्थान पर रूपक की ओर संकेत करते हुए दिख
देते हैं। आध्यात्मिक संकेत अस्पष्ट है, परन्तु उपस्थित है। इ
लीलाओं में इस प्रकार के संकेत नहीं, परन्तु कवि अपने विष
से इतना सुन्दर तादात्म्य स्थापित करने में सफल हुआ है कि
पाठक स्वयम् भाव की उच्चतम, अपार्थिक, और आध्यात्मिक
भूमि तक पहुँच जाता है।

यही नहीं, इन लीलाओं में हम पहली बार कवि को प्रकृ
के अत्यंत समीप देखते हैं। रास के प्रसंग में प्रकृति वोधिका
काम देती है, मान के प्रसंगों में वह उद्दीपन के रूप में हमारे
सामने आती है, परन्तु इन लीलाओं में हम उसे विषय के
अंतरंग में प्रविष्ट पाते हैं।

(१) राधे जु आज बरणो बसंत
मनहु मदन विनोद विहरत नागरी नवकंत
मिलत सम्मुख पटल-पाटल भरत मान जुही
बेलि प्रथम समाज कारण मेदिनी कुच गुही
कलस कंचन गरे कंचुकि कसी
लोचन निरखि मदु मुख हँसी
मेदिनीकुल भई बदन विकास
सहचरी पिक गान हृदय हुलास

उत सखा चंपक चतुर अति कुंद मनौ तमाल
मधुप मधि माला मनोहर सूर श्रीगोपाल

(२) ऐसो पत्र पठायो ऋतु वसंत। तजहु मान मानिनि तुरंत
कागज नवदल अंबुज पात। देति कलम मसि भँवर सुगात
लेखनि कामबाण के चाप। लिखि अनंत कसि दीन्हो छाप
मलयाचल पठ्यो बिचारि। बाचल पिक नव नेहु नारी

(३) देख्यो वृंदावन कमल नयन। मनो आयो है मदन गुण गुदर दमन
भए नवद्रुम सुमन अनेक रङ्ग। प्रतिलक्षित लता संकुलित संग
कर धरे धनुष कटि कसि निसंग। मनौ बने सुभट सजि कवच अंग
जहाँ थान सुमति वह मलय वात। अति राजत रुचिर विलोल पात
घमि घाय धरत मन तुरे गात। गति तेज पवन बाने उड़ात
कोकिल कूजत हैं हंस मोर। रथ धीज शिला पद्धर चकोर
बर ध्वजपताक तरतार केरि। निर्भर निसान हफ भँवरि भेरि

(४) समय वसंत विपिन रथ हय गज मदन सुभट नृप फौज पलानी
चहूँ दिशा चाँदनी चमू चलि मनहुँ प्रशंसित पिक बर बानी
बोलत हँसत चपल बंदीगन मनहु धवज सोइ धूर उड़ानी
सोलह कला छपाकर की छवि शोभित छत्र शीश शिरतानी
धीर समीर रटत बन अलिगण मनहु काम कर मुरलि सुठानी
कुसुम शरासन बान विराजत मनहुँ मानगढ़ ऋतु अनुमानी

(५) कोकिल बोली बन बन फूले मधुप गुँजारन लागे
सुनि भयो भोर रोर बंदिन को मदन महीपति जागे
तिन दूने अंकुर द्रुम पल्लव जे पहिले दव दागे
मानहु रतिपति रीझि याचकन बरन बरन दए बागे

(६) देखत नव ब्रजनाथ आजु अति उपजत है अनुराग
मानहु मदन मंडली रचि पुर बीथिन विपिन विहार
द्रुमगण मध्य पलास मंजरी मुदित अग्नि की नाईं
अपने अपने मेरनि मानो उनि होरी हरिष लगाई

१—राधा

सूरसागर पृ० १६१-१६२ में राधा का प्रवेश होता है। कृष्ण चकई लिये खेलने निकलते हैं। वहीं वे राधा को "औचक" ही देखते हैं। वह भी उन्हीं की तरह बालिका है, उन्हीं की तरह सखियों के साथ है।

कृष्ण पूछते हैं—तू कौन है ? किसकी बेटी है ? ब्रज में तो दीख नहीं पड़ी। राधा कहती है—क्यों आती ब्रज। अपनी पौरी खेलती हूँ। सुनती रहती हूँ नंदढोटा दधि-माखन की चोरी करता रहता है। कृष्ण कहते हैं—तुम्हारा हम क्या चुरा लेंगे ? चलो, साथ खेलने चलें। हमारी तुम्हारी जोड़ी रही (१६१, ६३)। प्रेम का उदय होता है। कृष्ण कहते हैं—

> खेलन कबहुँ हमारे आवहु नंदसदन ब्रजगाँव
> द्वारे आइ टेर मोहि लीजो कान्ह है मेरो नाँउ
> जो कहिये घर दूरि तुम्हारो बोलत सुनिए टेर
> तुमहि सौंहें वृषभानु बबा की प्रातसाँझ एक फेर
>
> (१६१, ६४)

कृष्ण राधा से इशारे में कहते हैं—

> खरिक आवहु दोहनी लै यहै मिस छल पाइ
> गाइ गिनती करन जैहैं मोहिं लै नँदराइ
>
> (१६२, ६५)

राधा अपने घर जाती है, माँ पूछती है, देर कहाँ लगाई, कहती है जरा खरिक. देखने गई थी (१६२, ६६)। अत्यन्त व्याकुलता है। माँ से दोहनी माँगती है (१६२, ६७), कहती है—

> खरिक माहिं अबही है आई अहिर दुहत अपनी सब गैया
> ग्वाल दुहत तब गाइ हमारी जब अपनी दुहि लेत
> घरिक मोहिं लगिहै खरिका में तू आवै जनि हेत
>
> (१६२, ६८)

उधर नंद कृष्ण को लिये खरिका में आ
कृष्ण राधा को खड़ी देख कर बुला लेते हैं;
खेलो, दूर मत जाना, मैं गिनती करता हूँ, पास
वृषभानु की बेटी, कान्ह को कोई गाय मारे नहीं (
अब कृष्ण और राधा अकेले हैं। यहीं से सूरदास
में प्रवेश करते हैं। राधा कहती है—नंदबबा ने
सुना। अब छोड़ कर गए तो मैंने पकड़ा। अब मैं
नहीं छोड़ूँगी। श्याम कहते हैं कैसी उपरफट बातें
छोड़। (१६२, ७०) कृष्ण राधा की नीवी पकड़ ले
पर हाथ धर देते हैं कि यशोदा आ जाती हैं। चतुर न
बालक बनकर बात बनाते हैं-देख माँ, गेंद चुरा ली, दे
राधा कहती है—झकझोरते क्यों हो, तुम ही अने
चलो न, बताऊँ कहाँ है गेंद (१६२, ७१)।

कृष्ण राधा को बुलाकर वृन्दावन जाने की बात क
(१६२, ७२)।

घटा उठती है। नंद डरते हैं। राधा को बुलाकर कहते हैं
कान्ह को घर लिए जा। राधा श्याम साथ-साथ बूँदों में भी
हुए वन से लौटते हैं—परस्पर सटे-सटे (१६२,७३-७४)। म
में रतिक्रीड़ा करते हैं। राधा मान करती है तो कृष्ण पाँव पक
कर मनाते हैं। यहाँ पर सूर पहली बार संभोग-विलास-चित्रण
करते हैं (१६३, ७५-८०) कृष्ण राधा को अंक में भर कर पहुँचा
आते हैं। अपने घर लौटते हैं। इस समय सूर एक नए प्रसंग
की सृष्टि करते हैं। कृष्ण राधा की सारी ओढ़ लेते हैं, राधा
पीताम्बर ओढ़ती हैं। जब घर पहुचते हैं तो
—तुम्हारा काम...

हौं गोधन ले गयो यमुन-तट तहाँ हती पनिहारी
भीर भई सुरभी तब बिडरी मुरली भली सँमारी
हौं ले गयो और काहू की सो लै गई हमारी
(१६१, ८२)

मैया री मैं जानत वाको
पीत उढ़निया जो मेरी लै गई लै आनीं धरि ताको
(१६३, ८३)

अपनी माया से कृष्ण उस लाल सारी को पीताम्बर बना देते हैं (१३२, ८३)। दूसरे पद में कृष्ण यशोदा की बात सुन कर लज्जा कर भाग जाते हैं (१६४, ८४)। राधा जब घर पहुँचती है तो उसकी आकुलता देख कर माता शंकित हो जाती है। यह और की और बात कहती है, कहीं नजर तो नहीं लग गई (१६४, ८५)। यहाँ सूर राधा की उक्ति से एक नए प्रसंग की नींव देते हैं—

जननी कहति कहा भयो प्यारी'
अबही खरिक गई तू नीके आवत ही भई कौन व्यथा री
एक बिटिनियाँ संग मेरे थी कारे खाई तहाँ री
मो देखत वह परी धरणि गिरि मैं डरपी अपने जिय भारी
श्याम वरण एक ढोटा आयो यह नहिं जानत रहत कहाँ री
कहत सुनौं वह नंद को बारो कछु पढ़िकै वह तुरतहि झारी
मेरो मन भरि गयो त्रास ते अब नीको मोहि लागतु भारी
(१६३, ८६)

मा उसे घर छोड़ कर इधर-उधर खेलने के लिए उलाहना देती है (१३४, ८७-८८)। फिर एक दिन राधा कृष्ण के घर आती है—

खेलन के मिस कुँवरि राधिका नंदमहर के आई हो
सकुच सहित मधुरे करि बोली घर हो कुँवर कन्हाई हो

सुन ! स्याम कोकिलगन बानी निकसे अति अतुराई हो
माता सों कछु करत कलह हरि सो डार्यो बिसराई हो
मैया री तू इनको चीन्हति बारम्बार बताई हो
जमुनातीर काल्हि मैं भूली बाँह पकरि लै आई हो
आवति यहाँ तोहि सकुचति है मैं दै सौंह बुलाई हो
(१६४, ८९)

यशोदा ने कहा—बुला लो। कृष्ण ने राधा का हाथ पकड़ कर उसे मा के पास बिठा दिया (१६४, ९०)। यशोदा और राधा में वार्तालाप होता है। यशोदा कहती है—ब्रज में तो मैंने तुझे देखा नहीं। कहाँ रहती है। मा-बाप कौन हैं (१६४, ९१-९२) राधा कहती है—मैं वृषभानु महरि की बेटी हूँ। मा तुम्हें जानती है। तुम पहचानती नहीं। यमुना पर कई बार मिली थी। यशोदा हँस कर बोली—जानती हूँ—बड़ी छिनार है। वृषभानु लंगर है। राधा क्रोध से बिगड़ उठी—बाबा ने तुम्हें कब छेड़ा है। यशोदा हँस कर उसे हृदय से लगा लेती है (१६४, ९२), उसकी चोटी गूँथती है, माँग निकालती है; नई सारी फरिया पहना कर गोद में तिल-चावल बताशे भरती है (१६४, ९३)। फिर कहती है—जा, श्याम के साथ खेल (१६४, ९४)। कृष्ण कहते हैं—यह राधा सकुचाती है। मैं बुलाता हूँ तो नहीं आती। तुमसे डरती है (१६५, ९६)। राधा अपने घर लौटती है (वही)। मा पूछती है—इतनी देर कहाँ लगाई, यह बाल किसने गूँथे हैं, माँग किसने निकाली है ? राधा यशोदा की बातें कह सुनाती है। मैया उन्होंने तुम्हें गाली दी। मैंने यह कहा...। मा बड़ी प्रसन्न होती है। हँस कर यशोदा को गाली देती है (१६५, ९६-९८)। उधर कृष्ण यशोदा से कहते हैं—मेरे खिलौने कहीं राधा न ले जाय, मा। यशोदा कृष्ण के खिलौने, चकडोरी, मुरली आदि सँवती फिरती है (१६५, ९९-१०१)

क दिन राधा प्रात: ही उठ कर यशोदा के घर जाने को तैयार ोती है। मा पूछती है तो खरिका जाने का बहाना करती है (१६१, ५३)। नंद के घर पहुँचती है। कृष्ण दरवाजे पर ाय दुह रहे हैं। देख कर यशोदा अंदर बुला लेती है (१६१, ५३-५४)। यशोदा उसे मट्ठा बिलोने को कहती है। राधा खाली मटकी में मथानी फेरने लगती है। मन कृष्ण की तरफ है। उधर कृष्ण गाय के स्थान पर वृषभ पकड़ लाते हैं (१६२, ५५) यशोदा कहती है—क्यों री, यही मथना सीखा है या मेरे यहाँ आकर भूल गई। राधा कहती है—आता कहाँ है। तुमने सौंह दिला दी थी, इससे आ गई (१६१, ५६)।

उधर सखागण कृष्ण की हँसी उड़ाते हैं जो बछड़े के पैर बाँध कर दूहने बैठे हैं (१६२)। इसके बाद कवि यशोदा के मुँह से राधा को सरस उलाहने दिलाता है (वही)। कभी कृष्ण मुरली लेकर खरिक में चले जाते हैं और राधा-राधा स्वर निकाल कर प्रसन्न होते हैं (वही)। जब राधा जाने लगती है तो यशोदा उसे बार-बार आने को कहती है (१६२-१६३)। सूरदास ने इस सरस लीला की कई छंदों में पुनरुक्ति की है (१६३)। कहीं कृष्ण के बछड़ा दूहने पर राधा हँसती है (१६३, ७१)। कहीं वह कृष्ण से अपनी गायें दुहाती है। दुहते-दुहते कृष्ण एक धार प्यारी राधा के मुँह पर चला देते हैं और राधा दूध में नहा जाती है (१६३, ७२)। इन बातों पर राधा सरस प्रेम भरे उलाहने देती है (१६३, ७३-७५)

कृष्ण ने राधा की गायें दुह दीं। वह लौटती है परन्तु लौटा नहीं जाता (१६३, ७६-७७)। अंत में मुरझा कर मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है। सखियाँ सँभाल कर घर लाती हैं। घर जाकर कहती हैं—इसे श्याम भुजंग ने डस लिया। कोई गारुड़ी बुलाओ (१६४, ७८-८२)। गारुड़ी आते हैं। पल्ला

घर चले जाते हैं। सखियों के कहने पर मा कृष्ण को बुलवा
हैं। स्वयम् वृषभानु-पत्नी बुलाने जाती है। यशोदा के घ
पड़ती है। कृष्ण राधा के पास पहुँचते हैं। राधा की मूर्च्छा उत
जाती है। कृष्ण राधा की लहर उतार कर युवतियों पर ड
देते हैं जो उन पर मुग्ध हो जाती हैं (१६४-१६६) और उन्
पति के रूप में पाने के लिए जपतप करने लगती हैं। कदाचित
इसी से चीरहरण लीला में राधा नहीं है।

इसके बाद हम राधा को पनघटलीला में अन्य सखियों के साथ पाते हैं—

> राधा सखियन लई बोलाइ
> चलहु यमुना जलहि जैये चली सब सुख पाइ
> सवनि एक एक कलश लीन्हो तुरत पहुँची जाइ
> तहाँ देख्यो श्यामसुन्दर कुँवरि मन हरषाइ
> नंदनंदन देखि रीझे चितै रहे चितलाइ
> सूर प्रभु की प्रिया राधा भरत जल मुसुकाइ
> (२०३, ७३)

पनघटलीला में प्रधानता गोपियों की है, राधा का प्रवेश केवल कथा जोड़ने के लिए हुआ है। राधा जल भर कर घर चलती है। सखियाँ उसे घेर कर चलती हैं (२०६, ७४-७६)। कृष्ण मुग्ध हो जाते हैं। आगे-पीछे चलकर सैकड़ों भाव बताते हैं। कभी छाँह छूते हैं। कभी सिर पर पीताम्बर ओढ़ लेते हैं (२०६, ७७), कभी राधा पर पीतांबर डाल देते हैं, कभी गागरी में कांकरी मारते हैं (२०६, ७८)।

दानलीला प्रसंग में राधा भी है—

> ब्रजयुवती नितप्रति दधि बेचन बनि बनि मथुरा जाति
> राधा चंद्रावलि ललितादिक बहु तरुणी इक भाँति
> (२३६)

परन्तु गोपियों के सामूहिक व्यक्तित्व में राधा जैसे खो गई हो। कथा-प्रसंग में उसका अलग उल्लेख नहीं है।

फिर राधा का स्पष्ट उल्लेख हमें पृ० २६१ पर मिलता है जहाँ कदाचित् राधा मटकी लेकर आती है। कृष्ण-राधा के कुञ्जविहार का प्रथम विस्तृत वर्णन यहाँ मिलता है। वहाँ ही राधा-कृष्ण के पुरातन, सनातन संबन्ध को कवि राधा-मोहन के संवाद के रूप में खोलता है। सूरसागर के आध्यात्मिक पक्ष के अध्ययन के लिये पृ० २६२ के पद महत्त्वपूर्ण हैं। कृष्ण राधा को अंक में भर कर घर पहुँचाते हैं (२६३)। सखियाँ समझ जाती हैं। पूछती हैं—राधा, इतनी क्यों फूली है। राधा छिपाती है (२६३, ६४)। घर पहुँचती है तो मा पूछती है—कहाँ थी? राधा बात बनाती है (२६४)। सूरदास ने राधा और उसकी मा का इस स्थल पर बड़ा सुन्दर चित्रण किया है (२६५)

उधर सखियों में कृष्ण-राधा-मिलन की चर्चा चलती है (वही)। वे सब मिल कर राधा के पास आ रही हैं। राधा मौन है। कथोपकथन चलता है। सखियाँ पूछती हैं। राधा बातों में भुलाती है। सखियाँ खीम कर लौट जाती हैं और एकान्त में बैठ कर राधा का चवाव करती हैं। अकस्मात राधा वहाँ आ जाती है। सखियाँ आदर से बैठाती हैं। बातों-बातों में राधा खिसिया जाती है। सखियाँ मनाती हैं, कहती हैं। अन्त में राधा मान कर कहती है—अच्छा, नहाने चलोगी (२६६-८)। इसके बाद सब नहाने जाती हैं। यमुना पर आकर सब जल में पैठ कर क्रीड़ा करती हैं। सहसा तट पर कृष्ण पहुँच जाते हैं। राधा कृष्ण पर मुग्ध होकर उन्हें एकटक देखने लगती है। सखियाँ कहती हैं—लो, देखे श्याम। राधा समझ गई। कल भुलावा दे दिया था, आज पकड़ी गई। सब लौटती हैं तो सखियाँ पूछती हैं—देखा, कैसे हैं। राधा बड़ी चतुराई से बातें बनाने लगती है

(भीष्मलीला २६८-२७३)। परन्तु जब यह चर्चा चल रही होती है, तभी मुरली में "राधा राधा" पुकारते हुए फिर कृष्ण जाते हैं। राधा चकित, थकित उन्हें फिर मुग्धवत देखने लग है। सखियाँ राधा से कृष्ण के अंग-प्रत्यंग की शोभा का वर करती हैं (२७३-२८०)। इसके बाद सखियाँ राधा से कह हैं—तू धन्य है। श्याम को तूने ही पहचाना। राधा गद्गद् जाती है। कहती है—सखियो, तुम तो मेरी बड़ाई करती हं परन्तु मैं तो उनके एक भी अंग को ठीक-ठीक नहीं देख पाती सूर के ये पद संसार के प्रेमकाव्य में विरल हैं (२८१-२८७) गोपियाँ जान जाती हैं, सच्चा प्रेम राधा का है। वह स्वयं कृ के रंग में रँग जाती है (२८७)।

गोपियाँ राधा से कहती हैं—बहन, तुम्हारी बात और है। बड़े घर की बेटी हो। तुम्हारा नाम कौन धरेगा ? हमें तो कुल की लाज है। राधा मुसका देती है (२८६)।

अब कृष्ण किशोर हो गए हैं। राधा यमुना जाती है। मार्ग में कृष्ण मिलते हैं। राधा प्रेम में विभोर है। उन्हें पकड़ लेती है। कहती है—अब नहीं छोड़ँगी। उलाहना देती है। कृष्ण हृदय से लगा लेते हैं। इस अवसर पर राधा "कुलकानि" को धिक्कारती है और कृष्ण से प्रणय-प्रार्थना करती है। इतने में ग्वाल-बाल आते दिखाई पड़ते हैं और कृष्ण हँसकर उनकी ओर मुड़ते हैं (२६०-२६१)।

सखियों ने राधा-कृष्ण का यह एकांत मिलन देख लिया है। पूछती हैं—कान्ह ने तुमसे क्या कहा ? राधा बात बनाती है परन्तु चलती नहीं। एक सखी कहती है—राधा ने कहा था कृष्ण ने "बँसरी" छीन ली है, देखना तो छीन लेना। कहो राधा तुमने छीना या नहीं। व्यंग समझ कर राधा कहती है—

मैं यमुना तट जात रही री
व्रज ते आवत देखि सखिन को इन कारण ह्यां परखि रही री
उतते आइ गए हरि तिरछे मैं तुम ही तन चिते रही री
बूझन लगे कान्ह ग्वालन को तुव तो देखे उनहिं नहीं री
कछु उनसों बोली नहिं सम्मुख नाहि तहाँ कछु बैन कही री
सूर श्याम गए ग्वालिनि टेरत ना जानौ तुम कहा गही री
तुम मेरी बेसरि को धाई

रुक्मिणियाँ राधा का व्यंग सुनकर लजा जाती हैं (२६२, ३३-३४)।
प्रातः कान्ह उठते हैं। बाहर जाने के लिए जल्दी करते हैं। माता चकित होती है। उधर राधा भी बड़ी तड़के उठती है। मा कहती है—राधा इतनी सवेरे कैसे जाग गई ? क्यों अकुलाई फिरती है ? मा ने देखा—बेटी की ग्रीवा में मोती की माला नहीं है। पूछा, कहाँ गई। राधा को सहारा मिला। कहने लगी— कल यमुना नहाते समय किसी ने चुरा ली या खो गई। इसी से जल्दी उठी, नींद ही नहीं आई। मा क्रोधित होकर कहती है—जा वहीं, जहाँ माला गवाँ आई। तब ही घर घुसना जब ले आए। अब तुझे एक भी आभूषण नहीं पहनाऊँगी। रहना नंगी। क्यों नहीं जाकर पूछती उनसे जो तेरे साथ नहाने गई थीं। राधा कहती है—बहुत सी सखियाँ थीं। किसका नाम लूँ ! हाँ, याद आई। जहाँ नहा रही थी वहीं देखो एक ब्रजयुवती खड़ी थी। उसी ने ली होगी। चलती हूँ। ब्रज में घर-घर ढूँढ़ते हुए कुछ देर हो जायगी। (२६३-६४)

उधर कृष्ण आकुलता से बाट जोह रहे हैं। कभी आँगने में हैं, कभी द्वार पर। माता चिंता में है, बात क्या है ? रोहिणी ग्वालों, हलधर और कृष्ण को बिठा कर कलेऊ खिलाती है। तभी राधा नंद के घर के पिछवाड़े पहुँचती है। झूठे ही चिल्लाती है—ललिता, रुक, कहाँ भागती है। कृष्ण हाथ का कौर डाल

कर दौड़ते हैं। माता के पूछने पर बात बनाते हैं—अभी एक सखा ने कहा था बन में एक गाय ब्याह रही है। वह मैं भूल गया था। अब याद आई (२९४-२९५) कुंज में राधा-मोहन का रति-प्रसंग चलता है (२९५-२९६)। लौट कर कृष्ण माँ से कहते हैं—यह तो मेरी गाय नहीं रही (२९७-८७)। लौटते समय राधा को एक सखी मिलती है। पूछती है—कहो, एक बात पोतते कहाँ से ? राधा हार की चोरी की बात कहती है। राधा डरती हुई घर पहुँचती है। यहाँ माता वैसे ही क्षोभ में बैठी है। लड़की सुबह से गई है। रात हो गई। राधा हार निकाल कर देती है। 'माँ, बहुत ढूँढा तब मिला' (२९८)।

अब कृष्ण व्याकुल हैं। कभी यमुना तट पर जाते हैं। कभी कदम्ब पर चढ़ कर राधा का मार्ग देखते हैं। कभी बन में जाकर कुंजधाम में प्रतीक्षा करते हैं। अंत में हार कर वृषभानु के घर पहुँचते हैं। राधा प्रसन्न हो जाती है (२९८, ९२)। राधा यमुना जल भरने चलती है। मार्ग में कृष्ण को देख कर संकेत करती है कि घर मिलना (२९८, ८४-९५) स्वयम् घर लौटकर प्रतीक्षा करती है। शृङ्गार करती है। सेज सँवारती है। कृष्ण आते हैं। रति-क्रीडा चलती है (२९९-३००) भोर हो जाती है। दोनों अलसा गए हैं। कृष्ण सो जाते हैं। राधा जगाती है (३००, १२ सखियों ने कृष्ण को राधा के घर से निकलते देखा तो चर्चा करने लगीं। उधर राधा को संकोच है—उन्होंने देख अवश्य लिया होगा। अब बात कैसे निभेगी ? सखियाँ आती हैं। उसी के सामने उसकी चतुराई का बखान करती हैं। राधा चुप है। सखियाँ इधर-उधर करके वही बात कहती हैं। राधा को बताती हैं कि उन्होंने कृष्ण को देख लिया (३०१-३०२)। राधा कहती है—कहाँ, मैंने तो नहीं देखा। तुम उन्हें देख कैसे लेती हो। मैंने तो आज तक नहीं देखा—

तुम कैसे दरशन पावति री
कैसे श्याम अंग अवलोकति क्यों नैनन को ठहरावति री
कैसे रूप हृदय राखति हौ वै तौ अति झलकावत री
मोको जहाँ मिलत हैं माई तहँ तहँ अति भरमावत री
मैं कबहूँ नीके नहिं देखे कहा कहौं कहत न आवत री
सूर श्याम कैसे तुम देखति मोहि दरश नहिं दावत री
(३०२, ३४)

राधा को गर्व हो जाता है। कृष्ण द्वार पर दिखाई पड़ते हैं परन्तु अंतर्धान हो जाते हैं (३०३, ४४)। राधा चकित है—ऐसा क्यों हुआ? समझ गई, यह गर्व का फल है। श्याम के विरह में वन-वन घूमने लगी।

सखी ने राधा के घर आकर उसकी यह दशा देखी तो पूछने लगी—कल तो और बात थी, आज क्या हुआ? राधा उसे कृष्ण समझ कर क्षमा-याचना करती है (३०४, ५१)। बाद में जानती है चंद्रावली है तो छिपाती नहीं। कहती है—सखी, कोई उपाय करो। सखी पहले तो उलाहना देती है कि छिपाती क्यों रही। राधा की विरहाकुलता और मिलन-उमंग का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है (३०४-६)।

सखी (ललिता) राधा को धीरज बँधा कर कृष्ण के पास पहुँचती है और 'अद्‌भुत एक अनुपम बात सुनाती है' (३०७) उन्हें कुंज में ले जाती है। राधा-कृष्ण का मिलन होता है। सखियाँ युगल-मिलन का आनंद लेती हैं (३०८-३०९)। इस मिलन प्रसंग को सूर ने नाना लीलाओं से सरस किया है:

(१) कृष्ण स्वयम् नायिका का वेष धारण करते हैं (३११)।

(२) राधा कृष्ण को वंसी लेकर बजाती है, कृष्ण छीन लेते हैं (वही)

(३) राधा कृष्ण के वस्त्र पहर लेती है, कृष्ण राधा के। कृष्ण मान करने बैठते हैं। राधा मनाती है (३१२)।

(४) कृष्ण नारी बन जाते हैं। राधा भी नारी-भेष में है। मार्ग में चंद्रावली मिलती है। भ्रम में पड़ जाती है। एक तो राधा है। यह दूसरी श्याम रंग की तरुणी कौन है? राधा से पूछती है। राधा कहती है—एक संबंधी हैं, मथुरा से आई हैं। चंद्राव कहती है—तो घूँघट क्यों करती है। कृष्ण से घूँघट छोड़ने कहती है। अंत में कृष्ण हँसकर चंद्रावली को कंठ से लगा ले है। कुंज में सखी के साथ राधाकृष्ण विहार करते हैं (३१३-१४)

फिर राधा घर पर कृष्ण की प्रतीक्षा में सज कर बैठती है प्रतिबिंब में अपना दर्पण देखकर उसे कोई दूसरी सुन्दरी समझे हुए है। डर है कि नागर कृष्ण इस सुन्दरी को देख कर कहीं मुग्ध न हो जायें। उससे बातें करने लगती है। कहती है—वे बड़े निठुर हैं। उनसे मन मत लगाना। पीछे आकर छिपे कृष्ण इस अद्भुत चरित्र को देखते हैं। अंत में पीछे आकर राधा की आँखें मूँद लेते हैं। इस प्रसंग के बाद जब चंद्रावली सखियों के साथ राधा के घर आती है तो वह उन्हें बड़ी आदर से बिठाती है। उनके पूछने पर सारी कथा भी कह देती है। (३१६-३१६)।

इतने में श्याम दिखलाई पड़ते हैं। त्रिभंगी छवि को देख कर सखियों का मन मोहित हो जाता है। इस अवसर पर सखियाँ मन और लोचनों के प्रति अनेक प्रकार की बातें कहती हैं (३१६-३३७)। इसी समय मुरली की ध्वनि सुन पड़ती है। मुरली-प्रसंग चलता है और रासपंचाध्यायी का प्रकरण आरम्भ होता है (३३८)।

रास के अवतरण में कृष्ण राधा के साथ अन्तर्धान हो जाते हैं परन्तु राधा को गर्व होता है और वह कृष्ण के कंधे पर चढ़ना चाहती है। फलस्वरूप कृष्ण अंतर्धान हो जाते हैं और गोपियां

[रा]धा को एक पेड़ के नीचे बिलखती पाती हैं। इस प्रसंग में राधा [के] विषय में कोई नई कल्पना नहीं की गई है। उसे केवल भागवत [क]े "विशेष गोपी" के स्थान पर रख दिया गया है। सूर-[दा]स के रास में राधाकृष्ण बीच में हैं, अन्य गोपियाँ उन्हें घेर [क]र नाच रही हैं (३४४, ३८)। कृष्ण भी पटसहस्र धन कर [उ]नके साथ क्रीड़ा करते हैं (वही)। इस प्रसंग में सूर ने राधा-[कृ]ष्ण के नृत्य विलास का जैसा चित्रण किया है, वह मौलिक [है]। यही नहीं, इस प्रसंग में सूर राधा के साथ कृष्ण का विवाह [भ]ी रचा डालते हैं जो भागवत में नहीं है (३४८)। इस विवाह [प्र]संग में कंगन खोलना आदि रीतियों और गोपियों के हास-[प]रिहास का वर्णन करके सूरदास एक अभिनवसरम सृष्टि कर [दे]के हैं। सूर ने दुलहे कृष्ण और दुलहिन राधा के बड़े सुन्दर [व]र्णन किए हैं (३४६)। गोपी-गर्वहरण के बाद जब कृष्ण [रा]स रचते हैं तो राधा को वही प्रधानता मिलती है। फिर जल-[क्री]ड़ा प्रसंग होता है। *इस अवसर पर भी हम राधाकृष्ण का* [र]ति-संग्राम देखते हैं।

[त]दनंतर जब दूसरे दिन कृष्ण राधा के पास जाते हैं तो वह [उ]नके हृदय में अपना प्रतिबिंब देख कर उसे दूसरी स्त्री समझ कर [ज]िसे कृष्ण ने अपने हृदय में स्थान दिया है, मान करती है [(]३६४)। दूती की सहायता से कृष्ण मानमोचन में सफल होते [हैं] (३६६-६६)। राधाकृष्ण का कुञ्जविहार चलता है (३७०)। [स]ूर राधाकृष्ण के रतिसंग्राम और रत्यंत छवि का भी चित्रण [क]रते हैं (३७१)।

इसके बाद खंडिता प्रसंग आरम्भ होता है जिसमें सूर कई [स]खियों को "खंडिता" बनाते हैं। एक बार वह राधा को भी [ख]ंडिता चित्रित करते हैं और उससे मान कराते हैं (३८०-३८४) [दू]ती की सहायता से मानमोचन होने पर वही कुञ्ज-विहार।

नहिं लिखे पद हरि ब्रजनाथ (८१८, ११)।

स्पष्ट है कि सूरदास ने राधा का विरह भी गोपियों के साथ चित्रित किया है—

कहा दिन ऐसे ही जैहैं (४८७, ५३)
गोपाल पाती धौं केहि देस (वही, ५४)
बारक जाइयो मिलि माधो
को जाने तनु छूटि जाइगो सूल रहै जिय साधो
पहलेहु नंदबाबा के आवहु देखि लेउं पल आधो
मिलेही मैं विपरीत करी विधि होत दरस को बाधो
× × ×
सूरदास राधा बिलपति है हरि को रूप अगाधो (४८७

"नैनप्रस्तांक" शीर्षक सारे पद सूरदास ने राधा के मु
ही कहलाए हैं (४८७-४६३); ऋतु-उद्दीपन-संबंधी पद (४६३
भी राधा के ही हैं। इस प्रकार हमें विरहिणी राधा का भी मा
चित्रण मिल जाता है। उद्धव-गोपी-प्रसंग और भ्रमरगीत में
नहीं आती। उनमें गोपियों का ही चित्रण है। परन्तु ब्रज से
कर उद्धव राधा का जो वर्णन करते हैं, वह इस प्रकार है—

हरि आये सो भली कीन्ही
मोहिं देखत कहि उठी राधिका अक तिमिर को दीनी
तनु अति कँपति विरह अति व्याकुल उर धुकधुकी खेद कीनी
चलत चरण गहि रही गई गिरि स्वेद सलिलमय भीनी
छूटी पट भुज फूटी बलिया टूटी लर फटी कंचुकी झीनी
मानो प्रेम के परन परेवा याही वे पढ़ि लीनी
(५६४, ४६)

इसके बाद पदों (५०-६२) में विरहिणी राधा के कितने ही मार्मिक चित्र उद्धव कृष्ण के सामने उपस्थित करते हैं। भ्रमरगीत

के प्रसंग में राधा भले ही न हो, परन्तु इस प्रकार वीथिका में उसका बड़ा ही प्रभावशाली चित्रण हो जाता है।

महाभारत के बाद कृष्ण द्वारका बसा कर बस जाते हैं। वहाँ एक दिन रुक्मिणी की याद दिलाने पर ब्रज के लिये आकुल हो कर चल देते हैं। अब कवि फिर राधा की ओर मुड़ता है। राधा को शकुन होते हैं (वायस गहगहात शुभ-वाणी विमल पूर्व दिशि बोली। आजु मिलाओ श्याम मनोहर तू सुनु सखी राधिका भोली ॥ ४६०,६)। दो छंदों में राधा सखी का विहार चलता है (३८६-७)। सूर का यह राधाकृष्ण-मिलन-सौंदर्य अद्वितीय है। चन्द्रावली राधा के घर सखियों के साथ आती है और सखियाँ उसके विश्रांत सौंदर्य को देखकर प्रसन्न होती हैं और उसकी टोह लेती हैं (३६०-६१)। यह सौंदर्य चित्र भी अपूर्व है (३६२-३६३) खंडिता प्रसंग के अंत में कृष्ण राधा के यहाँ आते हैं और वह उनका स्वागत करके उनसे प्रतीज्ञा करा लेती हैं कि अब कहीं नहीं जायेंगे (३६६-४००)।

सूरदास राधा के एक और मान की कल्पना करते हैं (४००-४१२)। इस मान के मोचन में दूती और कृष्ण को बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है।

तदनंतर हिंडोललीला (४१२-४१६), कुंजलीला (४१७-४२०), वसंतलीला, होली और फगुआ एवं फाग (४३०-४४८) में हम राधाकृष्ण की अनेक लीलाओं से परिचित होते हैं। इन लीलाओं में गोपियाँ भी भाग लेती हैं परन्तु प्रधानता राधा की है। वही इन लीलाओं की नायिका है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राधा को लेकर सूरदास ने अनेक लीलाएँ कही हैं और संयोग-शृङ्गार के बहुत से अंगों को स्पष्ट किया है।

सूरदास ने राधा का विप्रलंभ उतने विशदरूप से नहीं क
है जितना गोपियों का। कृष्ण के मथुरा जाने पर राधा की जो
दशा है उसका वर्णन केवल थोड़े पदों में मिलता है, परन्तु ये
पद बड़े मार्मिक हैं (४८६, १३-१७)।

एक पंथी को मार्ग में देख कर राधा बुला लेती है—

कहियो पथिक जाइ हरि सो मेरो मन अटको नैनन के लेखे
इहै दोष दै दै भगरत है तब निरखत मुख लगी क्यों निमेखे
कै तो मोहिं बताय दवकियो लगी पलक जड़ जाके देखे
ते अब अब इनपै भरि चाहत विधि जो लिखे दरशन मुख रेखे

× × ×

नाथ अनाथन की सुध लीजै
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत सब दीन मलीन दिनहि दिन छीजै

× × ×

दिखयति कालिन्दी अति कारी

गोपियाँ जब पंथी के सामने कृष्ण को उपालंभ देती हैं, त
राधा कह उठती है—

सखी री हरि को दोष जनि देहु
ताते मन इतनो दुख पावत मेरोई कपट सनेहु (४८४, ११)

× × ×

वार्तालाप के रूप में राधा की आकुल प्रतीक्षा का चित्रण
करता है (४६१, ८-१०)। कृष्ण आते हैं और रुक्मिणी के
कहने पर राधा को दिखाते हैं (४६१, १६)

"हरि जी इते दिन कहाँ लगाये
तबहि अवधि मैं कहत न समुझी गनत अचानक आये
भली करी जु अबहिं इन नैनन सुन्दर चरण दिखाये
जानी कृपा" "राजकाजहूँ हम निमिष नहीं बिसराये"

विरहिन विकल विलोकि सूर प्रभु धाइ हृदय हृदय कर लाये
कछु मुसुकाय कह्यो सारथि सुन रथ के तुरङ्ग छुराये

राधा ने आज पहली बार प्रभुता के बीच में कृष्ण को देखा। उसे पिछले सरल दिनों की याद आती है—

हरि जू वे सुख बहुरि कहाँ
यदपि नैन निरखत वह मूरति फिर मन जात तहाँ
मुख मुरली शिर मोर पखौवा गर घुँघचनि को हार
आगे धेनु रेनुतनुमंडित चितवत तिरछी चाल
राति दिवस अंग-अंग अपने हित हँसि मिलि खेल सरपात
सूर देखि वा प्रभुता उनकी कहि आवै नहिं बात (५६२, १६)

रुक्मिणी राधा से प्रेम कर लेती है। दोनों बहन-बहन की तरह बैठी हैं। कृष्ण आ जाते हैं—

राधा-माधव भेंट भई (५६२, २१)

अंत में कृष्ण राधा से कहते हैं—हम तुममें तो कोई अंतर नहीं और उसे व्रज भेज देते हैं।

बिहँसि कह्यो हम तुम नहिं अंतर यह कहि भुज पकड़ै
सूरदास प्रभु राधा-माधव व्रजविहार नित नई-नई
(५६२, २१)

और सखी के प्रति राधे के इस वचन से राधा का चित्रण समाप्त कर देते हैं—

करत कछु नाहीं आज बनी
हरि आए हौं रही ठगी-सी जैसे चित्त धनी
आसन हर्षि हृदय नहिं दीन्हो कमल कुटी अपनी
न्यवछावर उर अरघ न अंचल जलधारा जो बनी
कँचुकी ते कुच कलश प्रगट ह्वै टूटि न तरक तनी
अब उपजी अति लाज मनहि मन समुझत निज करनी

मुख देखत प्यारे-श्री रहिहीं बिनु बुधि मति सजनी
तदपि सूर मेरी यह जड़ता मंगल मांझ गनी
(५१२, २२)

गोपियाँ

गोपी-कृष्ण का शृङ्गार माखन-प्रसंग से शुरू होता है।
अभी राधा से कृष्ण का परिचय भी नहीं हुआ है—

मथति ग्वाल हरि देखा आइ
गये हुते माखन की चोरी देखत छवि रहे नयन
डोलत तनु शिर अंचलु उघरयो बेनी पीठि डोलत इहि
बदन इन्दु पय पान करन को मनहुँ उरग उडि लागत
निरखी श्याम अंग पुनि शोभा भुज भरि धरि लीनी उर
चिते रहे युवती हरि को मुख नयन सैन दे चितहिं
तन-मन-धन गति-मति बिसराई सुख दीनों कछु माखन
सूरदास प्रभु रसिक शिरोमनि तुम्हरी लीला को कहै
(१३५, ६३)

ग्वालिनी यशोदा के पास आकर उलाहना देती है—
सुनहु महरि अपने सुत के गुण कहा कहौं किहि भाँति बनाइ
चौली फारि हार गहि तोरयो इन बातन कहो कौन भ्लाइ
(१३६, ६६)

कृष्ण सफाई देते हैं—

झूठहि मोहिं लगावति ग्वारि
खेलत में मोहिं बोलि लियो है दोउ भुज भरि दीनी अँकवारि
मेरे कर अपने कुच धारति आपुहि चोली फारि (१३६, ६७)

यशोदा ग्वालिनों का विश्वास नहीं करती। कहती है—मेरा
कृष्ण तनिक सा तो है (१३६, ६८)। इस प्रसंग में गोपी
यशोदा के कथोपकथन में सूर ने मौलिकता का एक नया दे

पस्थित किया है। वे प्रगट बताते चलते हैं कि यह उलाहना रस प्रेम-निमंत्रण है—

> आवत सूर उलहने के मिसु देखि कुँवर मुसुकानी
> (१३६, ७१)

माखनचोरी के साथ-साथ यह शृङ्गारलीला भी चलती है। कृष्ण के वार्तालाप में भी सूर उनकी रसज्ञता प्रकट करते हैं—

> रह करत भाजे घर की मैं इह पति सँग मिलि सोई
> सूर वचन सुनि हँसी यशोदा ग्वालि रही मुख जोई
> (१३६, २४)

आगे चलकर सूरदास ऊखल-बंधन की कथा को कृष्ण की इस शृङ्गारलीला से संबंधित कर देते हैं। यशोदा गोपियों के उलाहनों से खीझी हुई है। जब कृष्ण बँध जाते हैं तो यही प्रेम-भरी गोपियाँ उन्हें छुड़ाने के लिये यशोदा की अनुनय-विनय करती हैं (१४०)। इसके बाद मुरलीवादन (१८६) से पहले हमें गोपियों के इस रूप के दर्शन नहीं होते; कृष्ण की अलौकिक लीलाएँ, वात्सल्य और राधा को लेकर शृङ्गार के प्रसंग चलते रहते हैं। मुरलीवादन के साथ ही गोपियों में कामोद्दीपन-सा हो जाता है—

> कहीं कहा अंगन की सुधि बिसर गई
> श्याम अधर मृदु सुनत मुरलिका चकृत नारि भई
> जो जैसे सो तैसे रहि गई सुख-दुख कह्यो न जाई
> चित्र लिखी-सी सूर रहि गईं इकटक पल बिसराइ
> (१८६, ७)

> सुनि ध्वनि चलीं ब्रजनारि
> सुत देह गेह बिसारि
> (१८६, ६)

इस अवसर पर सूर कृष्ण के सौन्दर्य का अलंक
में वर्णन करते हैं (१८६-१८८)।

गारुड़ी बनकर कृष्ण जब राधा की मूर्च्छा उतार दे
उसकी लहर तरुणियों पर डालते हैं। वे उन्हें पति रू
के लिए आकुल हो जाती हैं और शिवव्रत रखने
(१६६, १)। व्रत की समाप्ति पर कृष्ण जल में प्रगट हो
की पीठ मलते हैं (१६७, ७) और चीरहरण लीला क
यह दोनों प्रसङ्ग लीला-मात्र हैं, इनमें शृङ्गार भाव की
पुष्टि नहीं होती।

तदनंतर गोपियों के साथ पनघटलीला (२०२-२०८
दानलीला (२३३-२४७) के प्रसंग चलते हैं। दानलीला
में गोपियों के उन्माद का विशद चित्रण किया गया है
२६०)। ग्रीष्मलीला (२६८-२७०) के समय फिर सूरदास
गोपियों को कृष्ण के सौन्दर्य पर अनुरक्त करते हैं (२७
लगभग दस पृष्ठ कृष्ण के सौदर्न्य-चित्रण में ही समा
डालते हैं। इसके बाद राधा के प्रसंगों में गोपियाँ केवल द्र
हैं। वे युगलदम्पति की लीला में रस लेती हैं।

रासपंचाध्यायी (३३८-३६४) में कृष्ण गोपियों के
रास और जलक्रीडा करते हैं। गोपियों को जब अहंकार हो
है तो अन्तर्धान हो जाते हैं। उनके व्यथित होने पर दर्शन
हैं। गोपीविरह की कथा में सरलता अवश्य है परन्तु मौलि
भागवत से विशेष नहीं। खंडिता-समय (३७२-४१२) में
विशेष गोपियों का व्यक्तित्व अवश्य निखर जाता है, परन्तु इ
बारबार वही प्रसंग आते हैं। आने की बात कहकर कृष्ण
। रात बीतने पर जब आते हैं तब गोपी विशेष रत्नं
देख कर खंडिता हो जाती है, मान करती है। कृष्ण मा

दूती की सहायता से मानमोचन करते हैं और संयोग से उसे
त देते हैं।

हिंडोललीला (४१२-४१६) में भी शृङ्गार की विशेष पुष्टि
हीं। इसके बाद फिर मुरलीवादन और कृष्ण-सौन्दर्य-चित्रण
। अवसर (४२३-३६) आता है। वसंतलीला, होली, फगुआ,
ाग में केवल लीलाचित्र हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कृष्ण के मथुरा-गमन तक
ोपियों में कोई विशेष व्यक्तित्व का प्रस्फुटन नहीं होता। वे
ाधाकृष्ण की लीलाओं में सहायक मात्र हैं या उनसे केवल
श्यात्म भाव की पुष्टि में सहायता ली जाती है।

परन्तु अक्रूर के ब्रज में उपस्थित होने के साथ ही गोपियों
ं व्यक्तित्व का स्फुरन हो जाता है—

> चहत चलन स्याम कहत कोउ लेन आयो
> नंदभवन भनक सुनी कंस कहि पठायो
> ब्रजकि नारि गृह बिसारि व्याकुल उठि धाईं
> समाचार बूझन को आतुर है आईं
> प्रीति जानि हेतु मानि बिलखि बदन ठाढ़ी
> मानो वे अति विचित्र चित्र लिखित काढ़ी
> ऐसी गति ठौर-ठौर कहत न बनि आवै
> सूर स्याम बिछुरे दुख-विरह काहि भावै
> (४५६, ६६)

आगे के कुछ थोड़े ही पदों में सूरदास गोपियों को भाव के
अत्यंत ऊँचे स्तर पर पहुँचा सके हैं (४५६, ६७)। गोपियों
को सारी रात जागते बीतती है—

> सुने हैं स्याम मधुपुरी जात
> सकुचति कहि न सकत काहू सों गुप्त हृदय की बात

। नंद इस दृश्य को देख कर डर गये"" "राधा आई"" ।
ने राधा को बालक कृष्ण को सौंप दिया""

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में कृष्ण बहुत छोटे बालक हैं और राधा-
के सामने तरुणी के रूप में प्रगट होती हैं। नंद उसकी
[illegible]ौकिक सत्ता को पहचान कर (गर्ग ने पहिले ही बता दिया
) उसकी वंदना करते हैं और उसे बालक को सौंप देते हैं।
लेकर राधा गोकुल चली जाती है।

मार्ग में कृष्ण की माया से एक विशाल भवन प्रगट होता
वहाँ कृष्ण तरुण रूप में विराजमान हैं। कृष्ण राधा को
नी सत्ता के संबंध में परिचय देते हैं। ब्रह्मा प्रगट होकर कृष्ण
ा की स्तुति करते हैं और दोनों को विवाहसूत्र में बाँधते हैं।
के बाद ब्रह्मा चले जाते हैं और राधाकृष्ण के विलास का
न चलता है। अन्त में कृष्ण बालक हो जाते हैं और राधा
दा को बालक सौंप आती है। इस प्रकार की अलौकिक घट-
ओं से राधा की मानवता के विकास में अस्वाभाविकता उत्पन्न
जाती है, अतः सूर ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के चीरहरण-प्रसंग में राधा भी हैं जिनकी
ज्ञा से गोपियाँ श्रीकृष्ण को, जो कपड़े लिये हुए हैं, पकड़ने
इती हैं—नंगी! सूर में इसका उल्लेख नहीं। यह प्रसंग सूर ने
ा-कृष्ण-मिलन के पहले ही रख दिया है, अतः राधा की
आवश्यकता ही नहीं है।

सूर ने कृष्ण-राधा-परिणय की कथा रासप्रसंग में कही है।
वाह गांधर्व है। सखियों द्वारा विवाह सम्पन्न होता है। ब्रह्मा
दि देवता उपस्थित हैं, परन्तु विवाह में भाग नहीं लेते।
खियों के द्वारा विवाह सम्पन्न होने से लोकाचारों का सौन्दर्य
। प्रतिष्ठित हो सका है।

का वर्णन करते हैं (CXXVIII)। गोलोक से रथ आ और सब चढ़ कर चले जाते हैं (३५-५३)। कृष्ण इस के वृन्दावन में कृपादृष्टि से फिर गोपों-ग्वालों की उत्पत्ति क और उन्हें निरन्तर वहाँ का अधिवास देते हैं (CXXI ब्रह्मा के शाप से कृष्ण की द्वारका उजड़ जाती है और वे (स्वयम् वृन्दावन के कदम्ब के नीचे की एक मूर्ति में समा हैं (वही)।

यह स्पष्ट है कि इस पुराण का मुख्य विषय राधा लीला है। गोपियों का प्रेमप्रसंग रास के प्रकरण में ही मि है। अतः इसमें गोपीविरह, गोपीलगन और भ्रमरगीत प्रसंग नहीं हैं। वास्तव में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का आधार भागवत है जैसा कृष्ण की व्रज की अलौकिक कथाओं का मि करने पर स्पष्ट हो जाता है, परन्तु राधा की महत्ता और उस प्रतिष्ठा के उत्साह ने पुराण की कथाओं को दूसरा ही रूप दे दि है। भागवत से भिन्नता इस प्रकार है—

(१) कृष्ण "महाविष्णु" से भी ऊपर हैं परन्तु भागवत निर्गुण ब्रह्म के सगुण रूप नहीं हैं।

(२) वे चतुर्भुज रूप से महाविष्णु हैं, लक्ष्मी (कमला चरणसेविका है, द्विभुज रूप से गोलोक के कृष्ण हैं जिन पत्नी राधा है, उसी के साथ वे अवतार लेते हैं। गोलोक में भ वृन्दावन, रासमण्डल आदि उसी प्रकार हैं जिस प्रकार पृथ्वी पर यह ऐश्वर्य से पूर्ण है, अतः पृथ्वी के वृन्दावन और रासमण्ड में भी पुराण-लेखक वृदांवन के ऐश्वर्य रूप की कल्पना करता है और विश्वकर्मा से उसका निर्माण कराता है।

(३) कोई रूपक नहीं है।

(४) कथा में राधाकृष्ण के गर्हित सम्भोगविलास के कितने ही प्रसंग हैं। दोनों बारबार "कोकक्लाविशारद" कहे गए हैं।

[सू]रसागर में कृष्ण के लिये यही विशेषण अनेक बार आया है, [अ]तः प्रभाव लक्षित है।

(५) अवतार का कारण श्रीदामा का गोलोक की अधिष्ठात्री [दे]वी राधा को दिया हुआ शाप है। कृष्ण राधा को संभोगविलास [से] प्रसन्न करने के लिये ही जन्म लेते हैं।

(६) कितनी ही लीलाओं में थोड़ा बहुत अंतर है। यहाँ [के]लव धेनु के रूप में आता है (भागवत से तुलना कीजिये) [सा]रे असुर मूलतः वैष्णव सिद्ध किये गए हैं। कुछ लीलाएँ भी [न]हीं हैं। रासमण्डल की कल्पना ही अद्भुत है। वह एक [भ]वन है जहाँ ऐश्वर्य की सामग्री से भरे अनेक प्रकोष्ठ हैं जहाँ [कृ]ष्ण-गोपियों की रतिक्रीड़ा चलती है, नृत्य-गान नहीं (भागवत से तुलना कीजिये)।

संक्षेप में, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में राधा के संबन्ध में नए प्रसंग [जो]ड़े गये हैं। हमारा वृन्दावन गोलोक के वृन्दावन की प्रतिच्छाया [है]—यह दिखाने के लिये आरंभ में गोलोक के राधाकृष्ण-विहार [का] वर्णन है और अवतार का कारण भी नया कल्पित किया [ग]या है, यद्यपि पौराणिक कारण भी अन्य आगे के अध्यायों [में] है। गोलोक के ऐश्वर्य के जोड़ का ही ऐश्वर्य कृष्ण के वृन्दावन [में] प्रतिष्ठित करने की चेष्टा में लेखक ने रास आदि के संबन्ध में [भी] नई उद्भावनाएँ की हैं। वास्तव में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का [न]वीन कृष्णचरित्र गोलोक की राधाकृष्ण क्रीड़ाओं को बार-बार [पु]नरुक्ति मात्र है, परन्तु उसमें प्रसंगवश विरहिणी राधा का मार्मिक चित्रण हो सका है।

यह स्पष्ट है कि सूरदास इस पुराण से परिचित हैं। तीन-चार महत्त्वपूर्ण स्थल उन्होंने अपना लिए हैं—

(१) राधाकृष्ण का प्रथम परिचय, (२) रास में राधा का स्पष्ट उल्लेख, (३) विरहिणी राधा, (४) राधाकृष्ण का पुनर्मिलन।

परन्तु प्रत्येक प्रसंग में सूर ने नवीनता रखी है। यह होने पर भी सूर के तरुण राधाकृष्ण मूलतः ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के राधाकृष्ण हैं। वे दोनों कामकलाकोविद, चतुर नागर-नागरी हैं। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण जैसे स्थूल संयोग के चित्र सूर में बारंबार नहीं आये हैं, न उतने गर्हित हैं, परन्तु हैं कितने ही अवश्य। सूर में प्रतीक बना कर उनपर आध्यात्मिकता का आरोप भले ही कर दिया गया हो, यह स्पष्ट है कि सूर के ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के परिचय ने उन्हें राधाकृष्ण के प्रेमप्रसंग के चित्रण में बड़ी सहायता दी है, परन्तु सूर की मौलिकता ने उस कथा में नये अर्थ उत्पन्न किए हैं और उसका अत्यंत मानवीय विकास किया है एवं अलौकिकता से उसे युक्त किया है।

४

सूर की विनय-भावना

विनय के आधार की आवश्यकता है, जिसके लिये विनय की ाये। सूर ने आरम्भ में ही इस विषय में अपना मत निश्चित ज्या है। उनकी विनय का आलम्बन निर्गुण का सगुण वतार (कृष्ण) है। 'अविगत' निर्गुण के प्रति विनय की भावना रहस्यमूलक, अस्पष्ट और भ्रामक हो सकती है, अतः सूरदास ने अपना आधार "सगुन" माना—

अविगत गति कछु कहत न आवै
ज्यौं गूँगे मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति बिनु निरालंब कित धावै
सब बिधि अगम विचारहि तातैं सूर सगुन पद गावै

अब प्रश्न यह है कि वह "सगुन" रूप कौन-सा है जिसके प्रति सूर की विनय-भावना परिचालित है। वह है "वासुदेव" "जदुनाथ गुसाईं"—

वासुदेव की बड़ी बड़ाई

× × ×

बिनु दीन्हें ही देत सूर प्रभु ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं

इन्हीं के संबन्ध में सूर फिर कहते हैं—

वेद उपनिषद जासु कौं निरगुनहिं बतावै
सोई सगुन ह्वै नंद की दाँवरि बँधावै

परन्तु सूरदास इस बात में भी निश्चित हैं कि ब्रह्म सगुन रूप कितने ही हैं, सब एक ही हैं। निर्गुण के सगुण[1] में अवतार लेने के दो कारण हैं—

१—ब्रह्म की लीला।

२—भक्तों को आनन्द देना या भक्त का दुःख नाश करन

इस प्रकार भक्ति के आलम्बन के निश्चित हो जाने पर सूर अपनी विनय आरम्भ करते हैं।

पहले वे भगवान के स्वभाव का वर्णन करते हैं क्योंकि भ को उसी स्वभाव का आश्रय लेना है। यह स्वभाव ही उन्हें वि धर्म की ओर प्रेरित करता है। परन्तु न भगवान की "करनी" गति जानी जा सकती है, न उनके स्वभाव को।[1]

इस स्वभाव के अंग हैं—

(१) भक्तवत्सलता[2]
(२) भक्त की ढिठाई का सहना[3]
(३) भक्त का कष्टहरण[4]
(४) शरणागतवत्सलता[5]
(५) दीनग्राहकता[6]

---

[1] (१) करनी करुनासिन्धु की मुख कहत न आवै
(२) काहू के कुल तन न विचारत
अविगत की गति कहि न परति है, व्याध-अजामिल तारत

२ हरि सौं ठाकुर और न जन कौ

३ बासुदेव की बड़ी बड़ाई

४ ऐसी को करि अरु भक्त काजैं

५ जब जब दीनन कठिन परी

६ स्याम गरीबनिहूँ के गाहक

(६) गाढ़े दिन की मित्रता[७]

(७) अभयदान[८]

इस स्वभाव के विश्वास को लेकर ही भक्त आगे बढ़ता है। वह सांसारिक ऐश्वर्य को तिलांजलि दे देता है और भगवान की सम्पत्ति में ही अपने को धनी मानता है—

कहा कमी जाके राम धनी

मनसा-नाथ मनोरथ पूरन सुखनिधान जाकी मौज घनी
अर्थ, धर्म अरु काम, मोक्षफल, चारि पदारथ देत गनी
इन्द्र समान हैं जाके सेवक, नर बपुरे की कहा गनी
कहा कृपन की माया गनिये करत फिरत अपनी-अपनी
खाइ न सकै खरचि नहिं जानै ज्यौं भुवंग-सिर रहत मनी
आनँद मगन रामगुन गावै, दुख संताप की काटि तनी
सूर कहत जे भजत राम कौं तिनसौं हरिसौं सदा बनी

यही नहीं, वह आगे बढ़ कर अपने को महाराजों से भी बड़ा मानता है, भगवान का ऐश्वर्य ही उसका ऐश्वर्य है—

हरि के जन की अति ठकुराई

महाराज दिविराज, राजमुनि, देखत रहे लजाई
निरभय देह, राजगढ़ ताकौ, लोक मनन-उत्साह
काम क्रोध, मद, लोभ, मोह ये भए चोर तैं साहु
दृढ़ विश्वास कियौ सिंहासन, तापर बैठे भूप
हरिजस बिमल छत्र सिर ऊपर, राजत परम अनूप
हरि-पद-पंकज पियौ प्रेमरस, ताही कैं रँग रातौ
मंत्री ज्ञान न औसर पावै, कहत बात सकुचातौ
अर्थ काम दोउ रहैं दुबारै, धर्म मोक्ष सिर नावैं
बुद्धि-विवेक विचित्र पौरिया समय न कबहूँ पावैं

---

[७] गोविन्द गाढ़े दिन के मीत

[८] जाको हरि अंगीकार कियौ

माया-नटी के काम हैं भगवान से विमुखता उत्पन्न करना,
में अभिलाषाओं की तरंग उठा कर मिथ्या से परिचय कराना
र उसके प्रति आकर्षण (लोभ) उत्पन्न करना। उस प्रकार
भ्रम" की उत्पन्न ही दुःख का कारण है। इस भ्रम के मूल में
माया। इसी भ्रम के कारण मन सारवस्तु (भगवान) से डरता
। कालांतर में इसी भ्रम के कारण हिंसा, मद, ममता, आशा,
द्रा[1], काम, तृष्णा[2], परनिन्दा, शरीरसेवा, बाह्याडम्बर, विषय-
क्तता[3], राजस[4], अवहित वादविवाद[5] का जन्म होता है।
शा और तृष्णा का सूरदास ने विस्तृत वर्णन किया है—

यह आशा पापनी दहै
तजि सेवा वैकुण्ठनाथ की, नीच नरनि के संग रहै
जिनकौ मुख देखत दुख उपजत, तिनकौ राजा राम कहै
धन-मद-मूढनि, अभिमानिनि मिलि लोभ लिये दुर्वचन सहै
माधौ, नैकु हटकौ गाइ
भ्रमत निसि-बासर अपथ-पथ, अगह गहि नहिं जाइ
छुधित अति न अघात कबहूँ निगम द्रुम दलि खाइ
अष्ट दस-घट नीर अँचवति तृषा तउ न बुझाइ

---

१ अब हौं माया हाथ बिकानौ
हिंसा-मद-ममता-रस भूल्यौ, आसाहीं लपटानौ
याही करत अधीन भयौ हौं, निद्रा अति न अघानौ

२ भ्रम-मद-मत्त काम-तृष्ना-रस-बेग न क्रमै गह्यौ

३ परनिन्दा रसना के रस को केतिक जनम बिगोए
तैल लगाइ कियौ रुचि-मर्दन बस्तर मलि मलि धोए
तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै, विषयिनि के मुख जोए

४ इहिं राजस को न बिगोयौ

५ फिरि फिरि ऐसोइ है करत
अविहित बाद-बिवाद सकल मत इन लगि भेष धरत

छहौं रस जौ धरौं आगैं, तउ न गंध सु
और अहित अभच्छ भच्छति, कहा बरनि न
ब्योम, धर, नद, सैल, कानन इते चरि न अ
नील खुर अरु अरुन लोचन, सते सींग सु
भुवन चौदह खुरनि खूँदति सुधौं कहाँ सम
ढीठ, निठुर, न डरत काहूँ, त्रिगुन ह्वै समुह
हौं खल-बल दनुज-मानव-सुरनि सीस चढ़
रचि विरचि मुख-भौहँ-छवि ले चलति चित चुरा
नारदादि सुकादि मुनिगन थके करत उपा
ताहि कहु कैसैं कृपानिधि सकत सूर चरा

परन्तु जहाँ भक्त का अंतिम आश्रय भगवान का अनुग्र
क्योंकि वही माया और तृष्णा से उसका त्राण करेगा,
भी स्वयं अपनी ओर से प्रयत्नशील होना होगा। इसलि
का प्रधान प्रयत्न अपनी आत्म-प्रवञ्चना, आत्मशुद्धि और
प्रबोध ही होता है। वह सबसे प्रथम मन को भाँति भ
संबोधन करके उसे वस्तुस्थिति का परिचय कराता है—

(१) रेमन जग पर जानि ठगायो

धन-मद, कुल-मद, तरुनीकैं मद, भव-मद, हरि बिसराय

(२) रे मन छाँड़ि विषय को रँचिबो

(३) रे मन गोविन्द के ह्वै रहिये

(४) रे मन अजहूँ क्यों न सम्हारे

(५) नर कैं जनम पाइ कह कीन्हो

कवि मन को विश्वास दिलाता है कि वह मूल रूप से सात
है, वस्तुतः उसकी प्रवृत्ति बदली नहीं है, उसे केवल सांसारि
से ऊपर उठकर भगवान की ओर उन्मुख होना भर
वस्तुतः मन को अपना रूप पहचानना है—

रे मन, आपु कौं पहिचानि
सब जनम तैं भ्रमत खोयौ, अजहुँ तौ कछु जानि
ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै सु तौ ताकैं पास
भ्रमत ही वह दौरि ढूँढ़ै, जबहिं पावै बास
भरमही बलवंत सब मैं ईसहूँ कैं आइ
जब भगत भगवंत चीन्है, भरम मन तैं जाइ
सलिल लौं सब रङ्ग तजिकै, एक रङ्ग मिलाइ
सूर जो द्वै रङ्ग त्यागै, यहै भक्त-सुभाइ

। मन की स्वच्छता के लिए हरिकृपा तो वांन्छित है हैं
म और अंतिम साधन वही है, परन्तु स्वयं भक्त क्या करे
दास भक्त के लिये तीन साधनाएँ आवश्यक मानते हैं—

(१) नामस्मरण[१]
(२) भगवद्‌कथागान[२]
(३) भगवद्‌स्वरूपचिंतन[३]

---

१ राम न सुमिरयौ एक घरी
परम भाग सुकृत के फल तैं सुन्दर देह धरी

२ नर तैं जनम पाइ कह कीनौ
उदर भर्‌यौ कूकुर सूकर लौं प्रभु कौ नाम न लीनौ
श्री भागवत सुनी नहिं स्रवननि, गुरुगोविंद नहिं चीनौ

३ यहइँ मन आनन्द-अवधि सब
निरखि सरूप विवेक-नयन भरि, या सुख तैं नहिं और कछू अब
चित चकोर-गति करि अतिसय रति, तजि स्रम सघन विषय लोभा
चितै चरन-मृदु-चारु-चन्द-नख, चलत चिन्ह चहुँ दिसि सोभा
जानु सुजघन मकर-कर आकृति, कटि प्रदेस किंकिनि राजै
हृद त्रिय नाभि, उदर त्रिबली वर, अवलोकत अवभय भाजै
उरग-इन्द्र उनमान सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजै
कनक-वलय, मुद्रिका मोदप्रद, सदा सुभग सन्तनि काजै

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कर्म भी होने चाहिये। वे हैं गुरुभक्ति, दीनता की भावना, सत्संग। इन भावनाओं को साथ-साथ चलते रहना चाहिये। आत्मप्रताड़न—

(१) माधौ जू, हौं पतित सिरोमनि
और न कोई लायक देखौं, सत-सत अघ प्रति रोमनि

(२) हरि जू मोसो पतित न आन

शरणागति—

(१) अब हौं हरि, सरनागति आयौ

(२) मन बस होत नाहिनै मेरे
जिनि बातन तैं बहुयौ फिरत हौं सोई लै लै प्रेरै
कैसैं कहौं-सुनौं जस तेरे और आनि लचेरै
तुम तो दोष लगावन को सिर, बैठे देखत नेरै
कहा करौं, यह चरयौ बहुत दिन, अंकुस बिना मुकेरै
अब करि सूरदास प्रभु आपन, द्वार परयौ है तेरै

भगवान की अनुकंपा के प्रति आस्था—

भक्ति बिना जौ कृपा न करते तौ हौं आस न करतौ
बहुत पतित उद्धार किए तुम, हौं तिनकौं अनुसरतौ

इन्हीं भावनाओं के कारण भक्त ढीठ हो जाता है। वह भगवान से कहता है—

जानहौं अब बाने की बात
मोसौं पतित उधारौ प्रभु जौ तौ बदिहौं निज तात

उर बनमाल बिचित्र बिमोहन, भृगु भँवरी भ्रम की नाशै
तड़ित-बसन घन-स्याम सरस तन, तेजपुंज तन की भ्राजै
परम रुचिर मनि-कंठ किरनिगन, कुण्डल-मुकुट-प्रभा न्यारी
सिधु सुख मृदु मुसक्यानी मन्मथ मम, सकल लोक लोचन प्यारी
मत्य-मीन सम्भव सुमूरति, सुर-नर-मुनि भक्तनि भावै
अग अंग प्रति छवि तरंग गति सूरदास क्यौं कहि आवै

यह तो आत्मसमर्पण कर देता है—

हमें नंदनंदन मोल लिये

फिर यह ढीठ क्यों न हो जाय ? उसकी तो भावना है आनन्द—

(१) तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान
(२) मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै
(३) तुम तजि और कौन पै जाउँ !
(४) अब कै कहौ कौन दर जाउँ !
(५) जैसे राखहु तैसें रहौं

इसी ढीठता के बल पर यह कहता है

जौ पै तुमही बिरद बिसारौ
तौ कहौ कहाँ जाइ करुनामय, कृपिन करम कौ मारौ

कहावत ऐसे दानी दानि

चारि पदारथ दिए सुदामहिं अरु गुरु के सुत आनि
रावन के दस मस्तक छेदे, हति सारंगपानि
लंका दई बिभीषन जन कौं पूरबली पहिचानि
बिप्र सुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि
सूरदास सौं कहा निठुरई, नैननि हू की हानि

इसी प्रकार—

दीननाथ अब बारि तिहारी

यहाँ तक कि अन्त में यह भगवान के अनुकंपामय स्वभाव से प्रोत्साहित होकर कह ही जाता है—

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं
कै तुमही कै हमही, माधौ, अपुन भरोसे लरिहौं
हौं तौ पतित सात पीढ़िन कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौं
अब हौं उघरि नच्यौ चाहत हौं, तुम्हैं बिरद बिन करिहौं

कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायो हरि हीरा
सूर पतित तबही उठिहै प्रभु जब हँसि दैहौ बीरा

यह है सूर की विनय-भावना के मूल में काम करते मनोविज्ञान। केवल एक स्थान पर वे तुलसी की तरह भक्ति याचना करते हैं—

अपनी प्रभु भक्ति देहु जासों तुम नाता

परन्तु अन्य सभी स्थलों पर वे भगवान से मुक्ति की ही याच करते हैं और अपनी पतितावस्था और भगवान की पतित उद्धार बानि का सहारा लेते दिखाई पड़ते हैं।

सूर के संग्रहीत विनयपदों में दो यमुनास्तुति के पद भी हैं इनसे सूर की सामान्य विनय भावना पर प्रकाश पड़ता है—

भक्त जमुने सुगम, अगम औरे

प्रात जो न्हात अघ जात ताके सकल, ताहि जमहू रहति हाथ जोरै
अनुभवी जानही बिना अनुभव कहा, प्रिया जाकी नहीं चित चोरै
प्रेम के सिन्धु को मर्म जान्यौ नहीं, सूर कहि कहा भयो देह बोरै

फल फलित होत फल-रूप जानैं

देखिहू सुनिहू नाहिं ताहि अपनी कहै ताकी यह बात कोउ कैसैं मानै
ताहि के हाथ निरमोल नग दीजियै, जोइ नीकै परखि ताहि आनै
सूर कहि कूर तैं दूर बसिये सदा, जमुन को नाम लीजै जु जानैं

संक्षेप में, सूर की भक्ति में पतित-भावना इतनी अधिक है कि वह उनकी भक्ति को कहीं-कहीं विचित्र रूप दे देती है। सूर ने इन पदों को समझने के लिये जिनमें उन्होंने अपने को "पतित" "अधम" आदि नामों से याद किया है, इस पद को सामने रखना ठीक होगा।

(✓ अद्भुत जब विस्तार करन की हम जन जनको बड़ेरे

भक्तपावन कोउ कहत न कबहूँ, पतित-पावन कहि लेत
जय अरु विजय कथा नहिं कछुवै, दसमुख-वध विस्तार
जद्यपि जगत-जननि को हरता, सुनि सब उतरत पार
सेषनाग के ऊपर पौढ़त, तेतिक नाहिं बड़ाई
जातुधानि-कुच-गर-मर्दत तब, तहाँ पूर्नता पाई
धर्म कहैं, सर-सयन गङ्ग-सुत, तेतिक नाहिं सन्तोष
सुत सुमिरत आतुर द्विज उधरत, नाम भयौ निर्दोष
धर्म-कर्म-अधिकारिनि सौं कछु नाहिं न तुम्हरौ काज
भू-भार-हरन प्रगट तुम भूतल, गावत संत समाज

सी भावना से सूर के पद परिचालित हैं। यद्यपि सूरदास ने लसीदास की तरह विनय की शास्त्रीय पद्धति (वैष्णव विनय-द्धति) को अपने सामने नहीं रखा है, परन्तु विनय की समस्त मिकाएँ उनके पदों में मिल जाती हैं।

साधारणतः सूर के विनय पद भाव और भाषा की दृष्टि से धेक काव्यात्मक नहीं हैं, परन्तु जहाँ उन्होंने रूपकों की सृष्टि है, वहाँ वे पद अत्यन्त प्रभावशाली हो गये हैं। इस सम्बन्ध हम सूर के रूपकों का भी अध्ययन कर सकते हैं—

(१) नट का रूपक—

अब हौं, हरि सरनागत आयौ

कृपानिधान, सुदृष्टि हेरियै, जिहिं पतितनि अपनायौ
ताल, मृदङ्ग, झांझ, दुन्दुभि मिलि, बीना-वेनु बजायौ
मन मेरैं नट के नायक ज्यौं तिनहीं नाच नचायौ
उघरयौ सकल सङ्गीति-रीति-भव अंगनि अंग बनायौ
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह की तानतरङ्गनि गायौ
सूर अनेक देह धरि भूतल नाना भाव दिखायौ
नाच्यौ नाच लच्छ चौरासी, कबहूँ न पूरौ पायौ

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल
महामोह को नूपुर बाजत निंदा सबद रसाल
भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज चलत असङ्गत चाल
तृष्णा नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल
माया को कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल
सूरदास की सबै अविद्या दूर करौ नन्दलाल

(२) नदी-समुद्र के रूपक—

(१) अब मोहिं मजत क्यों न उबारो ?
दीनबन्धु, करुनानिधि स्वामी, जन के दुःख निवारो

(२) भवसागर मैं पैरि न लीन्हौ

(३) कब लागि फिरिहौं दीन बह्यौ

(४) अब कै नाथ मोहि उधारि
मगन हौं भव-अम्बुनिधि मैं कृपासिन्धु मुरारी
नीर अति गम्भीर माया लोभ-लहरि तरङ्ग
लिये जात अगाध जल कौं गहे ग्राह अनङ्ग
मीन इंद्री तनहिं काटत मोट अघ सिर भार
पग न इत उत धरन पावत उरझि मोह सिवार
क्रोध-दम्भ-गुमान, तृष्ना पवन अति झकझोर
नाहिं चितवन देत सुत-तिय नाम-नौका-ओर
थक्यौ बीच बिहाल, बिह्वल, सुनौ करुनामूल
स्याम, भुज गहि काढ़ि लीजे, सूर ब्रज के कूल

(३) वृक्ष का रूपक—

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै
ता दिन तेरे तन-तरवर के सबै पात झरि जैहैं

या देहि को गरब न करिये स्यार-काग-गिध खैहैं
तीननि मैं तन कृमि कै विष्टा, कै ह्वै खाक उड़ैहैं
कहँ वह नीर, कहाँ वह सोभा, कहँ रङ्ग-रूप दिखैहैं
जिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं

(४) चौपड़ का रूपक—

चौपरि जगत मडे जुग बीते
गुन पाँसे, क्रम अंक, चारि गति सारि, न कबहूँ जीते

(५) खेती के रूपक—

(१) प्रभुजू यौं कीन्हीं हम खेती
बंजर भूमि, गाँउ हर जोते, अरु जेती की तेती
काम क्रोध दोउ बैल बलो मिलि रज-तामस सब कीन्हौ
अति कुबुद्धि मन हाँकन हारे माया-जूआ लीन्हौ
इंद्रिय मूल किसान महातृन-अग्रज-बीज बई
जन्म जन्म की विषय-वासना उपजत लता नई

(१) जनके उपजत दुःख किन काटत !
जैसें प्रथम-असाढ़-आँजुलन खेतिहर निरखि उपाटत
जैसे मीन किलकिला दरसत ऐसें रहौ प्रभु डाटत
पुनि पाछैं अघ-सिन्धु बढ़त है, सूर खाल किम पाटत

के अतिरिक्त अन्य पदों में भी जहाँ उन्होंने रूपक, उत्प्रेक्षा,
मा आदि का प्रयोग किया है। वे विनय-भावना को अत्यन्त
ट और निश्चित रूप दे सके हैं जैसे

साचौं सो लिखवार कहावै

र 'हरि हौं ऐसो अमल कमायो' पदों में वे पटवारी के काम
सुन्दर रूपक उपस्थित करते हैं, "हरि हौं सब पतितनि
तेस" में राजा का रूपक बाँधते हैं, अथवा "व्याध" और
ंकुर" का रूपक बाँधते हुए कहते हैं—

अब कै राखि लेहु भगवान

हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुमडरिया पारधि साधे बान
ताकें डर मैं भाज्यौ चाहत ऊपर ढुक्यौ सचान
दुहूँ भाँति दुःख भयौ आनि यह कौन उबारे प्रान
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी कर छूट्यौ संधान
सूरदास सर लाग्यौ सचानहि जय-जय कृपानिधान

अद्भुत रामनाम के अंक

धर्म-अंकुर के पावन द्वै दल, मुक्ति-वधू-ताटंक
मुनि-मन-हंस-पच्छ-जुग जाकैं बल उड़ि ऊरध जात
जनम-मरन-काटन कौं कर्तरि तीछन बहु विख्यात
अंधकार-अज्ञान-हरन कौं रवि-ससि जुगल प्रकास
बासर-निसि दोउ करैं प्रकासित महा कुमग अनयास
दुहूँ लोक सुख करन, हरन दुःख, वेद पुराननि साखि
भक्ति ज्ञान के पंथ सूर ये प्रेम निरन्तर भाखि

अंत में सूरदास की यह भक्तिभावना जिस कृष्ण रूप के प्रति प्रगट हुई है वह निर्गुण से कम "अविगत" नहीं है परन्तु सगुण रूप होने के कारण उसकी सुन्दरता भक्त के मन में समा जाती है जिससे वह कुछ तृप्त अवश्य हो जाता है। वास्तव में सूर का विषय विनय नहीं, इसी अलौकिक, अविगत, सगुण सौंदर्य का अवलोकन, आस्वादन और ध्यान ही उनका लक्ष्य है। इस रूप के चमत्कारिक वर्णन से सारा सूरसागर भरा पड़ा है। स्मरण, कथाकीर्तन और ध्यान में यह ध्यान ही सूरदास ने सर्वश्रेष्ठ माना है। प्रमाण सूरसागर है जिसमें राधाकृष्ण का ध्यान सैकड़ों रूपों में अंतःचक्षुओं के सामने उपस्थित किया गया है।

५

सूरदास का वात्सल्य रस-निरूपण और वालवर्णन

[स]ूरदास से पहले हिंदी के किसी कवि ने वात्सल्य रस को नहीं
[लिय]ा; यह कम महत्त्व की बात नहीं कि सूरदास के साहित्य के
[कार]ण ही आज शास्त्रपंडित एक नये रस का अस्तित्व मान रहे
सूरदास के वात्सल्य रस-निरूपण का विश्लेषण करने से पहले
भूमिका-स्वरूप उनकी सीमाएँ बता देना चाहते हैं—

१—सूरदास के वात्सल्य रस के आलंबन (कृष्ण) अलौकिक
[है]ं साक्षात् ब्रह्म हैं; बालक बन कर लीला-मात्र कर रहे हैं। यह
गोप्य भी नहीं है। बहुधा यशोदा जानती है, गोपियाँ जानती
[न]ंद जानते हैं।

२—कोई न भी जानता हो, सूरदास अवश्य जानते हैं; वे
[ल]गभग प्रत्येक पद में 'प्रभु' आदि विशेषण डाल कर कृष्ण का
[अलौ]किकत्व चित्रण कर देते हैं।

३—स्वयं बालक कृष्ण अनेक अलौकिक लीलाएँ करते हैं,
[अने]क असुरों को मारते हैं, कालीयदमन करते हैं, मुँह खोल कर
[मा]ँ को विराटरूप दिखलाते हैं।

४—इसी अलौकिकता के कारण सूरदास कृष्ण पर छोटी
[अव]स्था में ही शृङ्गार रस का आरोपण कर देते हैं। कृष्ण गोपियों
[से छे]ड़छाड़ करते, राधिका से प्रेम चलाते हैं; परन्तु अभी बालक हैं।
ऊपर के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि ये सब बातें बालक के
[स्व]ाभाविक चित्रण की दृष्टि से दूषित हैं। संभव था कि इनकी

उपस्थिति के कारण वात्सल्य रस सुन्दर रूप में प्रकट नहीं परन्तु अनेक पदों में सूरदास कृष्ण की साधारण बाल लीला ही उपस्थित करते हैं और यशोदा उसे सहज बा के रूप में ही लेती हैं, अतः ऐश्वर्य का समावेश होते हुए भी चित्रण अत्यन्त सुन्दर और मार्मिक हुआ है। वात्सल्य के धन कृष्ण के रूपसौन्दर्य, क्रीड़ायें, वार्तालाप, दुःख-सुख क्रमशः विकास, संस्कार, बालसुलभ भोलापन, चपलता, उ जिज्ञासा आदि बालस्वभाव उद्दीपन हैं। नंद-यशोदा इस र भोक्ता हैं।

भागवत में कृष्ण की बाललीला का विशेष वर्णन नहीं अन्य पुराणों में तो इसका अभाव ही है। जो थोड़ा भागवत में वही सूर का आधार हो सकता था, परन्तु उस पर सूर ने अ प्रतिभा से एक बड़े अनुपम राजप्रासाद का ही निर्माण कर दि है। विश्व-साहित्य में शिशु की क्रीड़ाकेलि और माता के हृदय आशाकांक्षा का इतना सूक्ष्म, रसमय और विशद चित्रण क कहीं नहीं है। भागवत में बाललीला के प्रसंग कुछ ही अध्या में इस प्रकार आये हैं:—

नंदबाबा बड़े मनस्वी और उदार थे। पुत्र का जन्म होने प तो उनका हृदय विलक्षण आनंद से भर गया। उन्होंने स्ना किया और पवित्र होकर सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये फिर वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलवा कर स्वस्तिवाचन और पुत्र क जातकर्म-संस्कार करवाया······उस समय ब्राह्मण, सूत, माग और बंदीजन मंगलमय आशीर्वाद देने तथा स्तुति करने लगे गायक गाने लगे। भेरी और दुन्दुभि बजने लगीं। ब्रजमंडल के सभी घरों के द्वार, आँगन और भीतरी भाग झाड़ बुहार दिये उनमें सुगन्धित जल का छिड़काव किया गया; उन्हें वि ध्वजा-पताका, पुष्पों की मालायें, रंग-बिरंगे वस्त्र और

बा

पत्तों की बंदनवारों से सजाया गया। गाय, बैल और बछड़े को हल्दी-तेल से रँग दिया गया, और उन्हें गेरू आदि रंगीन धातुएँ, मोरपंख, फूलों के हार, तरह-तरह के सुन्दर वस्त्र और सोने की जंजीरों से सजा दिया गया। परिहित, सभी ग्वाल बहुमूल्य वस्त्र, गहने अँगरखे और पगड़ियों से सुसज्जित होकर और अपने हाथों में भेंट की बहुत सी सामग्री लेकर नन्दबाबा के घर आये।

(अध्याय ५, श्लोक १-८ जन्मोत्सव)

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण के करवट बदलने का अभिषेक उत्सव मनाया जा रहा था। उसी दिन उनका जन्म-नक्षत्र भी था···

(अ० ७, श्लोक ४ करवट बदलना और वर्षगांठ)

(अ० ८ में नामकरण-संस्कार का वर्णन है, परन्तु वह विशेष समारोह के साथ सम्पन्न नहीं हुआ है)

कुछ ही दिनों में राम और श्याम घुटनों और हाथों के बल बकैंया चल-चल कर गोकुल में खेलने लगे। दोनों भाई अपने नन्हे-नन्हे पाँवों को गोकुल की कीचड़ में घसीटते हुए चलते। उस समय उनके पाँव और कमर के घुँघरू झुनझुन बजने लगते। वह शब्द बड़ा भला मालूम पड़ता। वे दोनों स्वयं वह ध्वनि सुनकर खिल उठते। कभी-कभी वे रास्ते चलते किसी अज्ञात व्यक्ति के पीछे हो लेते। फिर जब वह देखते कि यह तो कोई दूसरा है, तब शङ्का से डर कर रह जाते और डर कर अपनी माताओं रोहिणी और यशोदा के पास लौट आते। माताएँ यह सब देख-देख कर स्नेह से भर जातीं। उनके स्तनों से दूध की धारा बहने लगती थी। जब उनके दोनों नन्हे-नन्हे से शिशु अपने शरीर में कीचड़ का अङ्गराग लगा कर लौटते, तब उनकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती थी। माताओं को कीचड़ का तो ध्यान ही न रहता। वे उन्हें आते ही दोनों हाथों से गोद में लेकर हृदय

में लगा लेतीं और उन्हें स्तन-पान कराने लगतीं। जब वे पीने लगते और बीच-बीच में मुस्करा कर अपनी माताओं और देखने लगते, तब वे उनकी मंद-मंद मुस्कान, छोटी-छोटी दँतुलियाँ और भोला-भाला मुँह देखकर आनन्द के सागर डूबने उतराने लगतीं।

जब राम-श्याम कुछ और बड़े हुए, तब व्रज में घर के ... ऐसी-ऐसी बाल-लीलाएँ करने लगे, जिन्हें गोपियाँ देखती ही ... जातीं। जब वे किसी बैठे हुए बछड़े की पूँछ पकड़ लेते ... बछड़े डर कर इधर-उधर भागते, तब वे दोनों और भी जोर ... पूँछ पकड़ लेते और बछड़े उन्हें घसीटते हुए दौड़ने लगते ... गोपियाँ अपने घर का काम-धंधा छोड़कर यही सब देखती रहतीं और हँसते-हँसते लोट पोट-हो जातीं। फिर दौड़ कर दुलारतीं और परम आनन्द में मग्न हो जातीं।

(अ० ८, श्लोक २१-२८ शिशुलीला)

अब वे बलराम और अपनी ही उम्र के ग्वालबालों को अपने साथ लेकर खेलने के लिये व्रज में निकल पड़ते और व्रज की भाग्यवती गोपियों को निहाल करते हुए तरह-तरह के खेल खेलते। उनके बचपन की चंचलताएँ बड़ी ही अनोखी होती थीं। गोपियों को तो वे बड़ी ही सुन्दर और बड़ी ही मधुर लगतीं। एक दिन सब की सब इकट्ठी होकर नन्दबाबा के घर आईं और यशोदा माता को सुना-सुना कर कन्हैया की करतूत कहने लगीं—अरी यशोदा यह तेरा कान्ह बड़ा नटखट हो गया है। गाय दुहने का समय न होने पर भी यह बछड़ों को खोल देता है और हम डाँटती हैं तो ठठा-ठठा कर हँसने लगता है। इतना ही नहीं, यह हमारे मीठे-मीठे दही-दूध चुरा-चुरा कर खा जाता है। इसे चोरी के बड़े-बड़े उपाय मालूम हैं। इससे कुछ भी बचने नहीं पाता। केवल अपने ही खाता तो भी एक बात थी, यह तो सारा दही-दूध वानरों को

ाँट देता है। और × × यह हमारे माटों को ही फोड़ डालता × × जब हम दही-दूध को छीकों पर रख देती हैं और सके छोटे-छोटे हाथ वहाँ तक नहीं पहुँच पाते, तब यह बड़े-बड़े पाय करता है। कहीं दो-चार पीढ़ों को एक के ऊपर एक रख ता है, कहीं ऊखल पर चढ़ जाता है और कहीं ऊखल पर पीढ़ा ख देता है। कभी-कभी तो अपने किसी साथी के कंधे पर ही चढ़ ाता है। जब इतने पर भी काम नहीं चलता, तो यह नीचे से ही न बर्तनों में छेद कर देता है। × × तनिक देखो तो इसकी प्रोर, वहाँ तो चोरी के अनेक ढंग निकालता है, तरह-तरह की ालाकियाँ करता है और यहाँ मालूम हो रहा है मानो पत्थर की ूर्त्ति खड़ी हो! वाहरे भोले-भाले साधु! इस प्रकार गोपियाँ हती जातीं और भगवान श्रीकृष्ण के भीत-चकित नेत्रों से युक्त ुखकमल को देखती जातीं। उनकी यह दशा देख कर नंदरानी शोदा उनके मन का भाव ताड़ जातीं और उनके हृदय में स्नेह ौर आनन्द की बाढ़ आ जाती। वे इस प्रकार हँसने लगतीं के अपने लाड़ले कन्हैया को इस बात का उलाहना भी न दे पातीं ाँटने की बात तक नहीं सोचतीं।

(अ० ८, श्लोक २६-२८ माखनचोरी और गोपियों का यशोदा को उलाहना)

सर्वशक्तिमान भगवान कभी-कभी गोपियों के फुसलाने से साधारण बालकों के समान नाचने लगते। कभी भोले-भाले अन-ज्ञान बालक की तरह गाने लगते। कहाँ तक कहूँ वे उनके हाथ ी कठपुतली हो गये थे।

(अ० ११, श्लोक ७)

राम और श्याम दोनों ही अपनी तोतली बोली और अत्यंत मधुर बालोचित लीलाओं से गोकुल की ही तरह वृन्दावन में भी ब्रजवासियों को आनन्द देते रहे। थोड़े ही दिनों में समय आने

पर वे बछड़े चराने लगे। दूसरे ग्वाल-बालों के साथ खेल लिये बहुत-सी सामग्री लेकर वे घर से निकल पड़ते और गौ के पास ही अपने बछड़ों को चराते। श्याम और राम कहीं बजा रहे हैं तो कहीं गुलेल या ढेलवाँस से ढेले फेंक रहे किसी समय अपने पैरों में घुँघरू पर तान छेड़ रहे हैं तो बनवारी गाय और बैल बनकर खेल रहे हैं।

(अ० ११, श्लो० ३७

एक दिन नन्दनन्दन श्यामसुन्दर वन में ही कलेवा के विचार से बड़े तड़के उठ गये और सींग की मधुर मनोहर से अपने साथियों को मन की बात जनाते हुए उन्हें जगाया बछड़ों को आगे करके वे व्रजमंडल से निकल पड़े। श्रीकृष्ण साथ उनके प्रेमी सहस्रों ग्वाल-बाल सुन्दर छीके, बेत, सी और बाँसुरी लेकर तथा अपने सहस्र-सहस्र बछड़ों को करके बड़ी प्रसन्नता से अपने-अपने घरों से चल पड़े। उन्हों श्रीकृष्ण के अगणित बछड़ों में अपने-अपने बछड़े मिला दि और यथास्थान बालोचित खेल खेलते हुए विचरने लगे। यद्यपि सब के सब ग्वाल-बाल काँच, घुँघची, मणि और स्वर्ण के गहने पहने हुए थे, फिर भी उन्होंने वृन्दावन के लाल, पीले, हरे फलों से, नयी-नयी कोंपलों के गुच्छों से, रंग-बिरंगे फूलों और मोर-पंखों से तथा गेरू आदि रंगीन धातुओं से अपने को सजा लिया × × ×

(अ० १२, श्लोक १-१० बनवारी)

सब के बीच में भगवान् श्रीकृष्ण बैठ गये उनके चारों ओर ग्वाल-बालों ने बहुत-सी मंडलाकार पंक्तियाँ बना लीं और एक-से एक सट कर बैठ गये। सब के मुँह श्रीकृष्ण की ओर थे और सब की आँखें आनन्द से खिल रही थीं। वन-भोजन के समय श्रीकृष्ण के साथ बैठे ग्वालबाल ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानों

कमल की कर्णिका के चारों ओर उसकी छोटी बड़ी पँखुड़ियाँ सुशोभित हो रही हों ××

(अ० १३, श्लोक ७-११ वनभोजन)

उस समय श्रीकृष्ण की छटा अवर्णनीय थी । घुँघराली अलकों पर गौओं के खुरों से उड़-उड़ कर धूलि पड़ी हुई थी, सिर पर मोरपंख का मुकुट था और बालों में सुन्दर सुन्दर जंगली पुष्प गुँथे थे । उनकी मधुर चितवन और मनोहर मुसकान देख-देख कर लोग अपने को निछावर कर रहे थे । श्रीकृष्ण मधुर-मुरली बजा रहे थे और साथी ग्वालबाल उनकी ललित कीर्ति का गान कर रहे थे । बंशी की ध्वनि सुन कर बहुत सी गोपियाँ एक ही साथ व्रज से बाहर निकल आईं । उनकी आँखें न जाने कब से श्रीकृष्ण के दर्शन के लिये तरस रही थीं । गोपियों ने अपने नेत्र-रूप भ्रमरों से भगवान् के मुखारबिंद का मकरन्द-रस पान कर दिन भर के विरह की जलन शांत की और भगवान ने भी उनकी लाजभरी हँसी तथा विनययुत प्रेमभरी चितवन का सत्कार स्वीकार करके व्रज में प्रवेश किया ।

(अ० १५, श्लोक १—४६ वन से लौटने का वर्णन)

सूरदास के बालकृष्ण काव्य में इन स्थलों का तो समावेश है ही, परन्तु उन्होंने माता-पिता और बालक के प्रकृत सम्बन्ध को अत्यंत निकट से देख कर अनेक नवीन सहृदयतापूर्ण उद्-भावनाएँ भी उपस्थित की हैं । इन नवीन उद्भावनाओं पर ही सूर के वात्सल्य-प्रधान काव्य की श्रेष्ठता प्रतिष्ठित है । वास्तव में भागवत में कृष्ण की बाललीला लीला मात्र है, वह रस के भीतर से प्रस्फुटित नहीं हुई है । इसी से उसमें वात्सल्य रस उमड़ा नहीं पड़ता । सूर ने बालक की लीला को माता-पिता और सुहृदों के हृदय के रस से सिक्त करके मधुर, सरस और स्वाभाविक बना

कछुक हाथ, कछू मुख माखन, चितवनि नैन विसाल
सूर प्रभु के प्रेम मगन भईं ढिग न तजति ब्रजबाल

स्वयं सूर के आराध्य बालकृष्ण हैं, इससे वे बाल-छवि का करते हुए नहीं थकते—

हरि जू की बाल छवि कहौं बरनि
सकल सुख की सींव कोटि मनोज-सोभा, हरनि
मञ्जु मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूषन भरनि
मनहुँ सुभग सिंगार सुरतरु फर्यो अद्भुत फरनि
लसत कर प्रतिबिम्ब मनि आँगन घुटुरुवनि चरनि
जलज संपुट सुभग छवि भरि लेति उर जनु धरनि
पुन्यफल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नन्दघरनि
सूर प्रभु की बसी उर किलकनि, ललित लरखरनि

सूर के बाल कृष्ण के चित्रण को कई विभागों में बाँटा सकता है (१) रूप-वर्णन, (२) चेष्टाओं और क्रीड़ाओं वर्णन, (३) अंतर्भाव (४) संस्कारों, उत्सवों और समा का वर्णन। रूपवर्णन में कृष्ण के सौन्दर्य को आलंबन मान कवि अनेकानेक उद्भावनाएँ सामने लाता है। चेष्टाओं क्रीड़ाओं का वर्णन भी कम नहीं है—

(१) सिखवत चलन जसोदा मैया
अरबराय करि पानि गहावत, डगमगाय धरै पैया

(२) पाहुनि करि दै तनक मह्यौ
आरि करै मनमोहन मेरो, अंचल आनि गह्यौ
व्याकुल मथत मथनियाँ रीती, दधि भ्वै ढरकि रह्यौ

सूर की बाललीला ब्रज के सारे समाज और नंदरानी के कुटुम्ब को समेट कर चलती है। छोटी-छोटी चेष्टाओं से भी जनसमूह के भीतर आनन्द और चिन्ता का संचार होता है

ाल-चेष्टाओं और क्रीड़ाओं द्वारा मातृसुख का वर्णन करने में ो सूर अद्वितीय हैं—

आँगन स्याम नचावहीं जसुमति नन्दरानी
तारी दै दै गावहीं मधुरी मृदु बानी
पायन नूपुर बाजई कटि किंकिनि कूजै
नन्हीं एड़ियन अरुनता फलबिंबन पूजै
जसुमति गान सुनै स्रवन तब आपुन गावै
तारि बजावत देखिकै पुनि तारि बजावै
नचि-नचि सुतहिं नचावई छबि देखत जियते
सूरदास प्रभु स्याम को मुख टरत न हियते

परन्तु रसपुष्टि से अधिक ध्यान सूर ने बालक के स्वाभाविक चित्रण पर दिया है जैसे इस पद में—

जेंवत नन्द-कान्ह इक ठौरे
कछुक खात लपटात दुहूँ कर बालक हैं अति भोरे
बड़ो कौर मेलत मुख भीतर मिचि दसन टुक तोरे
तीछन लगी, नयन भरि आये, रोवत बाहर दौरे
फूँकति बदन रोहिनी माता लिये लगाइ अँकोरे
सूर स्याम को मधुर कौर दे कीन्हे तात निहोरे

स्वभाव चित्रण के द्वारा रसोद्रेक में तो सूर और भी सिद्धहस्त हैं—

मैया ! मैं नाहीं दधि खायो
ग्वाल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो
देखि तुही छींके पर भाजन ऊँचे धर लटकायो
तुही निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो
मुख दधि पोंछ कहत नँदनदन दोना पीठ दुरायो
डारि साँट मुसकाइ तबहिं गहि सुत को कंठ लगायो

बाल-विनोद मोद मन मोह्यौ भक्ति प्रताप दिखावै
सूरदास प्रभु जसुमति के सुख सिव बिरंचि बौरावै

मनभावों का चित्रण तो पग-पग पर मिलेगा। नीचे के सवै
'स्पर्धा' की कितनी सुन्दर व्यंजना है—

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी

किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लांबी मोटी

इसी प्रकार खीझ का चित्र है—

खेलत में को काको गुसैयाँ

हरि हारे, जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयाँ
जाति पाँति हमतें कछु नाहीं, नाहिंन बसत तुम्हारी छैयाँ
अति अधिकार जनावत यातें अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर ने अपने आराध्य बालकृष्ण
वात्सल्य का अत्यन्त विशाल चित्रपटी पर अंकित किया है।

सूर के वात्सल्य वर्णन का आरम्भ कृष्ण जन्म से होता है
कृष्ण अयोनिज हैं। वे नंद-यशोदा की संतान नहीं हैं, परन्तु
उन्हें वैसा ही मानते हैं। जन्म का महान उत्सव होता है—

आज बन कोउ जनि जाइ

ढोटा है रे भयो महर के कहत सुनाइ सुनाइ
सबहिं घोष में भयो कोलाहल आनंद उर न समाइ

कृष्ण-दर्शन की लालसा से गोपीगोप थाल सजा कर नंद-भ
में पहुँचते हैं। स्वयं सूर वंदी के भेष में उपस्थित होते हैं। पा
का आयोजन होता है—

(१) अति परम सुन्दर पालना गढ़ि ल्याउ रे बढ़ैया
सीतल चन्दन कटाउ धरि खरादि रङ्ग लाउ

-- विविध चौकी बनाउ रङ्ग रेशम लगाउ.
हीरा मोती माल मढ़ैया

(२) पालना श्याम झुलावति जननी

(३) कन्हैया हालरु रे

गढ़ि-गुढ़ि ल्यायौ बाढ़ई, धरनी पर डोलाइ, बलि हालरु रे
इक लख माँगै बाढ़ई, दुइ लख नँदजु देहि, बलि हालरु रे
रतन जठित बर पालनौ, रेशम लागी डोर, बलि हालरु रे
कबहुँक झूलै पालना, कबहुँ नन्द की गोद, बलि हालरु रे
झूलैं सखी झुलावहीं, सूरदास बलि जाइ, बलि हालरु रे

होने पर गोपियाँ कृष्ण को गोद में लेने को ललकती हैं—

नेकु गोपालै मोको दै री
देखौं कमल बदन नीके कर ता पाछे तू कनियाँ लै री

त्तक उलट जाता है, मा का हृदय धन्य-धन्य हो उठता है—

महरि मुदित उलटाइ कै मुख चूमन लागी
चिरजीवो मेरो लाड़िलो मैं भई सभागी

तने में पड़े बालक को मा गा-गा कर सुलाती है—

जसोदा हरि पालनै झुलावै
हलरावै दुलरावै मलरावै जोइ-सोइ कछु गावै
मेरे लाल को आउ निदरिया, काहे न आनि सुवावै
तू काहे न बेगि सों आवै, तोको कान्ह बुलावै

र बालक की भी यह दशा है—

कबहुँ पलक हरि मुँद लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै
सोवत जननि मौन ह्वै ह्वै रहि, करि-करि सैन बतावै
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरै गावै

६

सुत मुख देखि जसोदा भूली

हरिषित देखि दूध की दँतियाँ प्रेममगन तन की सुधि भूली
बाहिर तैं तब नन्द बुलाये, देखौ धौं सुन्दर सुखदाई
तनक-तनक-सी दूधदँतुलिया, देखौ, नैन सफल करौ आई
आनँद सहित महर तब आए, मुख चितवत दोउ नैन अघाई
सूर श्याम किलकत द्विज देख्यौ मनो कमल पर बिज्जु जमाई

क तोतले बोल बोल कर माखन माँगता है—

खीझत जात माखन खात

अरुन लोचन, भौंह टेढ़ी, बारबार जँभात
कबहुँ रुनझुन चलत घुटुरुनि, धूरिधूसर गात
कबहुँ झुकिके अलक खैंचत नैन जल भरि जात
कबहुँ तोतरे बोल बोलत कबहुँ बोलत 'तात'
सूर हरि की निरखि सोभा निमिष तजत न मात

। बालक देहरी को लांघ नहीं पाता—

चलत देखि जसुमति सुख पावै

ठुमकि ठुमकि धरनीपर रेंगत जननिहिं खेल दिखावै
देहरी लौं चलि आत बहुरि कै फिरि इतहि को आवै
गिरि गिरि परत बनत नहिं नाघत सूरदास सुख पावै

अंगुली पकड़ कर चलाते हैं—

गहे अंगुरिया ललन की नंद चलन सिखावत
अरबराइ गिरि परत हैं कर टेकि उठावत

में बालक चलने लगता है—

कान्ह चलत हैं है पग धरनी
जो मन में अभिलाष करत ही सो देखत नन्दघरनी

परन्तु देहरी पर अटकता है—अति श्रम होत नघावत।
बोलने भी लगता है—

> कहन लगे मोहन मैया मैया
> पिता नन्द सों बाबा-बाबा अरु हलधर सों भैया

वह दही में मुख का प्रतिबिंब देखता है—

> कलबल तें हरि आरि परे
>
> × × ×
>
> सूर श्याम दधि-भाजन भीतर निरखत मुख मुख तें न टरे

भाई से झगड़ता है—

> कनक कटोरा प्रात हीं दधि घृतहु मिठाई
> खेलत खात गिरावहीं, झगरत दोउ भाई
> अरस परस चुटिया गहैं बरजति है माई
> महा ढीठ मानै नहीं, कछु लहर बढ़ाई

अब वह माखन माँगता है (तनक दे री माइ माखन त
दे री माइ) बालकों के संग घूमता है (विहरत विविध बालक सं
डगनि डगमग पगनि डोलत, धूरिधूसर अंग), चन्द्रमा के लि
झगड़ता है—

> ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनैं हरिहि लिए
> चन्द दिखावत । रोवत कत बलिजाउ तुम्हारी
> देखौं धौं भरि नैन जुड़ावत

कृष्ण कहते हैं—'लगी भूख, चंद मैं खैहौं'। तब यशोदा क
नाई में पड़ जाती है। अंत में उसे एक तरकीब सूझती है—

> बाहन में जल धरयौ जसोदा हरि कौ आनि दिखावै
> रुदन करत, ढूँढत, नहिं पावत, चंद धरनि क्यों आवै

अब कृष्ण बड़ा हो गया है, पैरों चलने लगा है। मा नहलाने को बुलाती है—

जसुमति जबहिं कह्यो अन्हवावन रोइ गये हरि लोटत री
लेत उबटनो आगे दधि कहि लालहिं चोटत पोटत री
मैं बलि जाउ न्हाउ जनि मोहन कत रोवत बिन काजे री
पाछे धरि राखो छपाइ कै उपटन तैल समाजे री
महरि बहुत बिनती करि राखत मानत नहीं कन्हाई री
सूर स्याम अति ही बिरुझाने सुनि सुनि अंत न पाई री

इसके बाद भी अनेक बाल-प्रसंग हैं। मा बालक को दूध पीना छुड़ाती है—

जसुमति कान्हहिं यहै सिखावति

सुनहु स्याम अब बड़े भए तुम कहि स्तन पान छुड़ावति
ब्रजलरिका तोहिं पीवत देखत हँसत लाज नहिं आवति
जैहैं बिगरि दाँत ये आछे तातैं कहि समुझावति
अजहूँ छाँड़ि, कह्यो करि मेरो, ऐसी बात न भावति
सूर स्याम यह सुनि मुसुक्याने, अंचल मुखहिं लुकावत

मा-बाप प्रातः बालक को जगाते हैं—

(१) प्रात समय उठि सोवत सुत को बदन उघारयो नंद
रहि न सके अतिसय अकुलाने बिरह निसा के द्वन्द
(२) भोर भये निरखत हरि को मुख प्रमुदित जसुमति हरषित नन्द
दिनकर किरन कमल ज्यों बिकसत, निरखत उर उपजत आनन्द
(३) जागिये गोपाल लाल आनन्दनिधि नन्दबाल जसुमति कहै बारबार भोर भयो प्यारे। नैन कमल से बिसाल प्रीति-बापिका मराल मदन ललित बदन ऊपर कोटि वारि डारे ॥ उगत अरुन बिगत सर्वरी ससांक किरनहीन दीन दीपक मलिन छीन दुति समूह तारे ॥ मनहुँ

ज्ञान धन प्रकाश बीते सब भव विलास आस त्रास तिमिरि तोस तेज जारे॥ बोलत खग मुखर निखर मधुर है प्रतीत सुनहु परम जीवनधन मेरे तुम बारे॥ मनौं वेद बंदी मुनि सूतवृन्द मागध विरद बदत जै जै जैत कैट भारे॥

माता-पिता की पुत्रविषयक चिंता के इतने मार्मिक व और कहाँ मिल सकेंगे—

(१) साँझ भई घर आवहु प्यारे

दौरत कहा चोट लगिहै कहुँ पुनि खेलिहौ सकारे

(२) न्हात नन्द सुधि करी स्याम की ल्यावहु बोल कान्ह बलराम खेलत बड़ी बार कहुँ लाई, ब्रजमीतर, काहू के घर मेरे संग आइ दोउ बैठें उन बिनु भोजन कैसे काम जसुमति सुनत चली अति आतुर ब्रज घर घर टेरति लै नाम आजु अबेर भई कहुँ खेलत बोलि लेहु हरि कौं कोउ बाम ढूँढि फिरी नहिं पावति हरि कौं, अति अकुलानी, तावति घाम

(३) आँगन में हरि सोइ गए री

दोउ जननी मिलि कै, हरुएँ करि, सेज सहित तब भवन लए री

कालियदमन, गोवर्धनलीला और मथुरागमन के समय माता पिता की चिंता वात्सल्यवियोग के श्रेष्ठतम उदाहरणों के रूप में उपस्थित की जा सकती है।

सूर के बालवर्णन में भी भक्ति और अध्यात्म का समावेश है। वास्तव में जो यशोदा-नंद के लिये वात्सल्य रस है, व सूर और भक्त के लिए भक्तिरस है। भक्तिरस क्या है, र गंगाधर के लेखक लिखते हैं—

भगवदालंबनस्य रोमांचाश्रुपातादिरनुभावितस्य हर्षादिभिः पोषितस्य भागवतादि पुराण श्रवणसमय भगवद्भक्तरनुभूयमानस्य भक्तिरसस्य दुरपह्नवत्वात।

(भगवान जिसके आलंबन हैं, रोमांच, अश्रुपातादि जिसके अनुभाव हैं, भागवतादि पुराण श्रवण के समय भगवद्भक्त भक्तिरस के उद्रेक से जिसका अनुभव करते हैं, वही भगवद्-नुरागरूपा भक्ति ही स्थायीभाव है)

इसी भक्ति-भावना के कारण

(१) सूर बालकृष्ण को "हरि" "धरनीधर" आदि नामों से पुकारते हैं।

(२) असुरलीला के वे सब प्रसंग जो भागवत में हैं अपनी कथा में भी रखते हैं जिनसे भगवान के ऐश्वर्य का गुणगान ही होता है।

(३) अनेक विस्मयकारी घटनाओं को उपस्थित करते हैं जैसे पाँडेलीला, मुँह में मूर्त्ति रखकर नंद को विश्वदर्शन कराना, माटी-प्रसंग आदि।

(४) वात्सल्य रस में अद्भुत रस का समावेश कर देते हैं जैसे कृष्ण के अँगूठा देने और मथानी लेने से प्रकृति में विक्षेप होने लगता है—

कर पग गहि अंगुठा मुख मेलत
प्रभु पौढ़े पालने अकेले हरपि हरपि अपने ढङ्ग खेलत
सिव सोचत, विधि बुद्धि विचारत, बाट बाढ्यो सागर जल झेलत
बिडरि चले घन प्रलय जानि कै दिग्पति दिगदंतीनि सकेलत

जब मोहन कर गही मथानी

(५) इसी प्रकार "हरिहरभेष" के वर्णन में भी भगवान के ऐश्वर्य का ही चित्रण है (देखिये पद 'सखि री नंदनन्दनु देखु' और 'बरनौं बालवेष मुरारी')

(६) सूरदास की यशोदा कृष्ण को रामकथा सुनाती हैं। जब सीताहरण की बात सुनते हैं, तो कृष्ण "लक्ष्मण" को

पुकारने लगते हैं। इस प्रकार सूर ने अद्भुत ढंग से रा
और कृष्णावतार को एक कर दिया है।

इनके अतिरिक्त सूरदास पग-पग पर नन्द-यशोदा के
को सराहते हैं। उन्होंने सहज प्राकृत बालक का चित्रण कर
भी कृष्ण की अलौकिकता की रक्षा की है। हमें यह समझ
चाहिये कि भक्तों की भावना में रसों के विरोध का परिहार
जाता है। इसे न समझ कर हम भ्रम में पड़ जाते हैं। इ
असुरवध के प्रसंग आदि अद्भुत रस और वीररस के
उपस्थित नहीं करते, वरन् भगवतनिष्ठा को ही दृढ़ करते
और हम बाललीला में भगवान के और निकट पहुँच जाते

६

सूरदास का शृङ्गार

कृष्ण-काव्य के शृङ्गार के आलंबन कृष्ण, गोपियाँ और राधा
;, परन्तु सूरदास ने गोपियों को लेकर रूपक ही अधिक खड़े
कये हैं, इसलिये उनको लेकर शृङ्गार को विकसित नहीं कर सके
। किसी भी गोपी का अपना विशेष व्यक्तित्व सूरसागर में
कसित नहीं हुआ है। जहाँ व्यक्तित्व ही नहीं है, वहाँ रूप-
र्णन और नखशिख कैसा ? ललिता, चंद्रावली आदि राधा की
खियों के रूप में चित्रित हैं। उनका कृष्णलीला में वही स्थान
जो कृष्ण के संबन्ध में सुबल, सुदामा आदि गोपों का।
संगवश ललिता कहीं दूतीकर्म अवश्य करती है और कहीं वारी-
ारी ये सब सखियाँ खंडिता बन जाती हैं और फिर कृष्ण
मानमोचन और संयोग का विषय चलता है, परन्तु इन
थाओं में शृङ्गार की परिपाटी का पूर्णतः पालन नहीं है।
तीकर्म इतना विशद नहीं है, जितना विद्यापति में है, न सूर-
ागर में उज्ज्वल नील मणि का दूती-विभाजन ही हुआ है।
ह प्रसंग गौण है। दूसरी कथा तो कृष्ण के बहुनायकत्व के
दर्शन के लिए है जिसमें गोपियों का व्यक्तित्व कृष्ण के व्यक्तित्व
े दबा हुआ है। इन कथाओं में शृङ्गारशास्त्र से सहारा लेते
ए भी सामग्री स्वतंत्र रूप से खड़ी की गई है। चीरहरण,
निघट-प्रसंग, दानलीला, जलक्रीड़ा, बहुनायकत्व आदि प्रसंगों में
गोपियों के सौंदर्य की व्यंजना ही हो सकी है, उनका विशद
नखशिख-वर्णन नहीं ... शास्त्र के स्वर के

ऊपर बजते हैं। जहाँ सौन्दर्य-वर्णन है भी, वहाँ व परंपरागत हैं—

गागरि नागरि जलभरि घर लीन्हे आवै
सखियन बीच भरयो घट शिर पर तापर नैन चलावै
डुलित ग्रीव लटकटि नकबेसरि मंद मंद गति आवै
भृकुटी धनुष कटाच्छ बाण मनो पुनि पुनि हरिहि लगावै
जाको निरखि अनंग अनंगत ताहि अनंग पढ़ावै
सूरश्याम प्यारो छवि निरखत आपुहि धन्य करावै
गागरि नागरि लिये पनिघट ते चली घरहि आवै
ग्रीवा डोलत लोचन लोलत हरि के चितहि चुरावै
ठिठकति चलै मटकि मुँह मोरै बंकट भौहें चलावै
मनहुँ कामसेना अँगशोभा अचल ध्वज फहरावै
गति गयंद कुच कुम्भ किंकिनी मनहु घंट भहनावै
मोतिनहार जलजल मानो खुमी दंत झलकावै
मानहु चंद महावत मुख पर अंकुश बेसरि लावै
रोमावली सूंडि तिरनी लौं नाभि सरोवर आवै
पग जेहरि जंजीरनि जकरयो यह उपमा कछु पावै
घटजल झलकि कपोलनि किनुका मानहुँ मदहि चुवावै
बेनी डोलति दुहुँ नितंब पर मानहुँ पूँछ हिलावै
गजसरदार सूर को स्वामी देखि देखि सुख पावै

(पनघट-प्रसंग)

लेहौं दान इनन को तुम सों
मत्त गयंद हंस हम सोहैं कहा दुरावति हम सों
केहरि कनक कलस अमृत के कैसे दुरै दुरावति
विद्रुम हेम बज्र के किनुका नाहिन हमें सुनावति
खग-कपोत कोकिला-कीर खंजनहुँ मृग-मृग मानति

मणि कंचन के चित्र जरे हैं एते पर नहिं मानति
सायक चाप तुटय वनि जति हो लिये सबै तुम जाहु
चंदन चमर सुगन्ध जहाँ तहँ कैसे होत निबाहु

यह सुन चकित भई ब्रजबाला

तरुणी सब आपस में बूझति कहा कहत गोपाला
कहाँ तुरंग कहाँ गज केहरि कहाँ हंस सरोवर सुनिये
कंचन कलश गढ़ाये कब हम देखे धौं यह गुनिये
कोकिल कीर कपोत बनन में मृग खंजन शुक संग
तिनको दान लेत है हमसों देखहु इनको रंग
चदन चौंर सुगध बतावत कहाँ हमारे पास
सूरदास जो ऐसे दानी देखि लेहु चहुँ पास

प्रगट करौ सब तुमहिं बतावैं

चिकुर चमर घूँघट है बरबर सुव सारंग दिखावैं
वाण कटाक्ष नयन खंजन मृग नासा शुक उपमाउ
तीखन चक्र अधर विद्रुम छबि दशन वज्र कनकाउ
ग्रीव कपोत कोकिला वाणी कुचघट कनक सुभाउ
जोवन मदरस अमृत भरे हैं रूप रंग झलपाऊ
श्रंग सुगंध वसन पाटंबर गनि गनि तुमहिं सुनाऊँ
कटि केहरि गयंदगति शोभा हंस सहित यकताऊँ

(दानलीला)

अन्य प्रसंगों में राधा के नखशिख और सौन्दर्य चित्रण में सखियों के सौन्दर्य की व्यंजना हो जाती है या कथा को इतना अवकाश ही नहीं मिलता। सच तो यह है कि सूर ने गोपियों को आलंबन रूप में चित्रित नहीं किया है—यदि थोड़ा-बहुत चित्रित भी किया है तो कथा-प्रसंग आदि रूपकों की सिद्धि के लिये। अतः सूरसागर में गोपियों का नखशिख लगभग नहीं मिलता।

रेखा अत्यन्त विभिन्न और विस्तृत दी है। राधा-कृष्ण का
र एकांगी नहीं है। इसी से दोनों के नखशिख की योजना है।
ष्ण का नखशिख-चित्रण गोपियों और राधा दोनों के दृष्टिकोणों
हुआ है। इस भूमिका को समझ कर ही आगे बढ़ना उचित
गा। गोपियाँ और राधा दोनों कृष्ण के सौन्दर्य पर मुग्ध हैं
रन्तु कवि के दृष्टिकोण के कारण दोनों के कृष्ण के प्रति दृष्टि-
ोण में अंतर पड़ जाता है। राधा के प्रेम का कहना ही क्या,
ह तो एकदम रहस्यात्मक है, अलौकिक है, परन्तु गोपियों का
म इतनी ऊँचाई तक उठ ही नहीं सकता। गोपियों में शृङ्गार
ाव माखनचोरी के प्रसंग से शुरू होता है—

मैया री मोहि माखन भावै

मधुमेवा पकवान मिठाई मोहि नहीं रुचि आवै
ब्रजयुवती इक पाछे ठाढ़ी सुनति श्याम की बात
मन में कही कबहुँ मेरे घर देखौं माखन खात
बैठे जाय मथानियाँ के ढिग मैं तब रहौं छिपानी
सूरदास प्रभु अंतरयामी ग्वालि मनहिं की जानी

स पद में आध्यात्मिक अर्थ का शृङ्गार से जोड़ मिला दिया
या है। यहीं से कृष्ण का शृङ्गार रसपूर्ण चित्रण होता है और
सका आलंबन—कृष्ण का किशोर सौन्दर्य—हमारे सामने
ाता है—

गोपाल दुरे हैं माखन खात

देखि सखी सोभा जु बनी है श्याम मनोहर गात
उठि अवलोकि ओट ठाढ़े ह्वै जिहि बिधि है लखि लेत
चकृत बदन चहुँ दिशि चितवत और सखन को देत
सुन्दर कर आनन समीप अति राजत इहि आकार
मनौ सरोज बिधु बैर बेचिकरि लिये मिलत उपहार

गिरि गिरि परत बदन के ऊपर ह्वै दधिसुत के बिंदु
मानहु सुभग सुधाकन बरसत बिमयो आनन इन्दु

यही गोपी का भी चित्रण है जिसमें कवि कृष्ण में यौन म के आरंभ का संकेत करता है—

मथति ग्वालि हरि देखी जाइ
गये हुते माखन की चोरी छवि रहे नयन लगाइ
डोलत तनु सिर अंचल उघरयो बेनी पीठि डोलत धाइ
बदन इंदु पय पान करन को मनहुँ उरग उठि लागत धाइ

जब यशोदा कृष्ण को रस्सी से बाँध देती है, तो गोपियाँ व्य होकर कृष्ण की रोती हुई छवि पर रीझ जाती हैं—

मुख छवि देखिहो नंदघरनि
शरद निशि के अंशु अगणित इंदु आभा हरनि
ललित श्रीगोपाल लोचन लोल आँसू ढरनि
मनहुँ बारिज बिलखि विभ्रम परे परवश परनि
कनक मणिमय मकर-कुण्डल ज्योति जगमग करनि
मित्र लोचन मनहु आये तरल गति दोउ तरनि
कुटिल कुन्तल मधुर मिलि मनौ कियो चाहत लरनि
बदन कांति अनूप शोभा सकै सूर न बरनि

हरि मुख देखिहौं नँदनारि
महरि ऐसो सुभग सुतसों इतो कोह निवारि
जलज मंजुल लोल लोचन शरद चितवनि दीन
मनहुँ खेलत है परस्पर मकरध्वज द्वै मीन
ललित कण संयुत कपोलनि ललित कज्जल अंक
मनहुँ राजत रजनि पूरन कला अति अकलंक

गोपियाँ कृष्ण की प्रत्येक छवि पर मुग्ध हैं—उनकी वाणी थकती ही नहीं, नेत्र थकते ही नहीं।

चकई-भौंरा-प्रसंग में राधा-कृष्ण का प्रथम परिचय होता है।
छवि पर गोपियाँ भी मोहित हैं—

मेरे हियरे माँझ लगो मनमोहन ले गयो मन चोरी
अबहीं इहि मारग ह्वै निकसे छवि निरखत दृग तोरी
मोर-मुकुट श्रवणन मणि-कुण्डल उर बनमाला पीत पिछोरी
दसन चमक अधरन अरुणाई देखत परी ठगोरी

संग में सूर राधा के दृष्टिकोण से कृष्ण का चित्रण नहीं
—वहाँ प्रेम प्राकृत रूप से आप ही जन्म ले लेता है। फिर
दशा जहाँ गोपियों और कृष्ण का मिलन होता है, वहीं कृष्ण
न्दर्य-वर्णन जैसे आवश्यक हो जाता है—

दिन वर गिरिवरधारी। देखत रीझीं घोषकुमारी
मुकुट पीताम्बर काछे। आवत देखे गाइन पाछे
इन्दु छवि बदन विराजे। निरखि अंग प्रति मन्मथ लाजे
शत छवि कुण्डल नहिं तूलै। दशन-दमक द्युति दामिनि भूलै
कमल मृगशावक मोहै। शुकनासा पटतर को कोहै
: बिम्बफल पटतर नाहीं। विद्रुम अरु बंधूक लजाहीं
(चीरहरणलीला)

ही जमुन जल लेन माई हो साँवरे से मोही॥ सुरङ्ग केसरि
कुसुम की दाम अभिराम कंठ कनक की दुलरी झलकत पीतांबर
री॥ नान्ही नान्ही बूँदन में ठाढ़ो हो बजावै गावै मलार की
तानै मैं तो लाला की छबि नेकहु न जोहै॥ सूरश्याम मुरि
नि छबीरी अँखियन में रही तब न जानौं हौं कोही॥

तो पट लपटानो कटि बन्सीवट यमुना के तट नागर भट।
तटकि अरु भृकुटि मटक देखै कुण्डल की चटक सों अटकि परी
लपट॥ आछी चरणनि कंचन लकुट टरकीली बनमाल कर
न डगर टेढ़े ठाढ़े नंदलाल छवि छाई घट घट। सूरदास प्रभु

की पालक देखे गोपीग्वाल ठाढ़े न टरत निरखि प्यारे हरि की तरु।

(पनघटलीला)

पनघटलीला के बाद राधा गोपियों के मानों का उभर देखो। कहती है कि उसने कृष्ण को देखे ही नहीं, इसीमें अगली की लीला में कृष्ण का अत्यंत सुन्दर चित्रण है—

यमुना जल विहरत ब्रजनारी
तट ठाढ़े देखत नँदनंदन मधुर मुरलि कर धारी
मोर मुकुट श्रवनन मणि कुण्डल जलजमाल उर भ्राजत
सुन्दर सुभग श्याम तनु नवघन बिच बगपाँति बिराजत
उर बनमाल सुभग बहुभाँतिनु स्वेत लाल सित पीत
मानो सुरसरि तट बैठे शुक बरन बरन तजि मीत
पीताम्बर कटि में छुद्रावलि बाजत परम रसाल
सूरदास मनो कनक भूमि ढिग बोलत रुचिर मराल

नटवर भेष काछे स्याम
पद कमल नख इंदु शोभा ध्यान पूरण काम
जानु जंघ सुघटनि करभो नाहिं रम्भा तूल
पीत पट काछनी मानहु जलज केसर झूल
कनक छुद्रावली पङ्गति नाभि कटि के भीर
मनहुँ हँस रसाल पङ्गति रहे हैं ह्रदतीर
झलक रोमावली शोभा ग्रीव मोतिन हार
मनहुँ गंगा बीच यमुना चली मिलि त्रिय धार
बाहु दण्ड विशाल तट दोउ अंग चंदन रेनु
तीरतरु बनमाल की छबि ब्रजयुवति सुखदेनु
चिबुक पर अधरनि दशनद्युति बिम्बु बीज लजाइ
नासिका शुक नयन खंजन कहत कवि शरमाइ

श्रवण कुण्डल कोटि रवि-छवि भृकुटि कामकोदंड
सूर प्रभु हैं नीप के तर शीश धरे श्रीखंड

से ही कितने उत्कृष्ट पद इस प्रसंग में हैं। सखियाँ और राधा स रहस्यात्मक सौन्दर्य को देख कर मुग्ध हैं। इस प्रसंग के वर्णन के पीछे सूर का दृष्टिकोण क्या है, यह हम पीछे खेंगे। यहाँ राधा के दृष्टिकोण से सूर का एक पद देकर गे बढ़ते हैं —

थकित भई राधा व्रजनारि
जो मन ध्यान करति अवलोकन ते अंतर्यामी बनवारि
रत्नजटित पग सुभग पाँवरी नूपुरध्वनि कल परम रसाल
मानहु चरण-कमल-दल लोभी निकटहि बैठे बाल मराल
युगल जंघ मरकत मणि शोभा विपरित भाँति सँवारे
कटि काछनी कनक क्षुद्रावलि पहिरे नंददुलारे
हृदय विशाल माल मोतिन बिच कौस्तुममणि अति भ्राजत
मानहु नभ निर्मल तारागन ता मधि चंद्र विराजत
दुहुँकर मुरलि अधर परसाये मोहन राग बजावत
चमकत दशन मटकि नासापुट लटकि नयन मुख गावत
कुण्डल झलक कपोलनि मानो मीन सुधासर क्रीड़त
भृकुटी धनुष नैन खंजन मनो उड़त नहीं मन व्रीड़त
देखि रूप ब्रजनारि थकित भई क्रीट मुकुट शिर सोहत
ऐसे सूरश्याम शोभानिधि गोपीजन मन मोहत

नुराग-समय के ये पद राधा के मुख से कहाये गये हैं और ये उसी प्रकार राधा के प्रेम के चित्र उपस्थित करते हैं स प्रकार भ्रमरगीत के पद गोपियों के प्रेम के अभिव्यंजक हैं।

रास-प्रसंग, जलक्रीड़ा और वसंत लीलाओं में राधाकृष्ण युगल सौन्दर्य का साथ-साथ अनेक परिस्थितियों में चित्रण । कवि को कुछ भी अग्राह्य नहीं है। पास बैठे हुए राधाकृष्ण

अरुझि रहे मुकुताहल निआरत सोहत घूँघर बारे-बार
रति मानी सँग नँदनंदन के छूटे बंद कंचुकी टूटे हार
निशि के जागे दोउ नैन ढरकि रहे चलति जोबन मद भार
सूर, श्याम सँग इह सुख देखत रीझै बारम्बार
(प्रातः)

श्यामा श्यामे सुभग यमुना जल निर्भ्रम करत बिहार
पति कमल इंदीवर पर मनो मोरिछ नए विहार
श्रीराधा अंबुज कर भरि भरि छिरकत बारम्बार
कनकलता मकरन्द झरत मनु ढालत पवन-सँचार
अवसी कुसुम कलोर बूँदै प्रतिबिंबित निरधार
ज्योति प्रकाश सुघन में खोलत स्वाति सुवन आकार
धाइ घरे वृषभानु-सुता हरि मोहे सकल शृंगार
विद्रुम जलद सूर मनों विधु मिलि सुवत सुधा की धार
(जलविहार)

सूर के काव्य को साधारण पाठक शृंगार से लांछित करते हैं और यह तो कितने ही आलोचक मानते हैं कि सूर रीतिशास्त्र से प्रभावित हैं या परवर्ती रीतिकाव्य को उनसे विशेष सहारा मिला है। यहाँ हमें सूर के शृङ्गार पर ही विचार करना है।

सूर का शृङ्गार गोपी-कृष्ण और राधा-कृष्ण को लेकर चलता है। अतः इनमें से प्रत्येक को अलग-अलग लेंगे। दोनों कथायें पहले दे चुके हैं।

राधाकृष्ण की कथा रीतिशास्त्र की उपेक्षा करके स्वतंत्र रीति से गढ़ी गई है। उस पर जयदेव या विद्यापति का प्रभाव बहुत ही थोड़ा है। जयदेव (या ब्रह्मवैवर्त्त कहिये) से प्रेम-प्रसंग ले लिया गया है, लेकिन प्रथम मिलन की कल्पना

नए ढंग से की गई है। विद्यापति का काव्य रीति पर स पूर्वराग, वयःसंधि, मिलन, अभिसार, मान, दूती, मान पुनर्मिलन, विरह। सूर ने इस क्रम को नहीं रखा है। कथा को अत्यंत स्वाभाविक ढंग से विकसित किया है। देख चुके हैं। सूर में राधा का पूर्वराग और वयःसंधि न राधा को हठ कर अष्टनायिका के रूप में चित्रित नहीं गया है यद्यपि प्रसंगवश नायिकाभेद आ अवश्य जाता है कई बार यशोदा के घर आती है, परन्तु इसे अभिसार न सकते। सूर उसकी वेषभूषा, अभिसार की कठिनाइयों का वर्णन नहीं करते। न अवसर के अनुसार अभिसारि भेद करते हैं। वास्तव में राधा का अभिसार-चित्रण सूर का नहीं है। कथा के सहज विकास में राधा कई बार कृष्ण से प्रयत्न करके मिलती है। एक बार तो हार खोजने के बहा मिलती है। ऐसे ही रास के प्रसंग में भी अभिसार का चि नहीं हुआ है। सूर की राधा और गोपियाँ अनेक परिस्थितिय कृष्ण से मिलती हैं, परन्तु इस मिलन के पीछे अभिसार योजना नहीं होती। मानप्रसंग में जहाँ सखी स्पष्ट कहती है "चलो किन मानिनि कुंज कुटीर" वहाँ भी सूर अभिसार शास्त्रीय विधि से नहीं लिखते वरन् उत्प्रेक्षाएँ लिख कर जाते हैं—

मनो गिरिवर ते आवति गङ्गा
राजत अति रमणीक राधिका यहि विधि अधिक अनूपम अंग
गौरगात द्युति विमल वारि निधि कटितट त्रिवली तरल तरङ्ग
रोमराशि मनो यमुन मिली अघ भँवर परत मानो भ्रु बभङ्ग
भुजवल पुलिन पास मिलि बैठे चारु चकवे उरज उतङ्ग
मनो मुख मृदुल पानि पंकरुह गुरुगति मनहुँ मराल विहङ्ग
मणिगण भूषण रुचिर तीरवर मध्यधार मोतिन मैं मङ्ग

सूरदास-मनो चली सुरसरी श्री गोपाल-सागर सुख सज्ञा

संयोग-चित्रण के अनेक प्रसंग हैं—बाला, गोप, गाय दुहब, रास, जलक्रीड़ा, कुंजलीला, दानलीला, हिंडोल, होली, वसंत, फाग, कुरुक्षेत्र-मिलन। रीतिशास्त्र में संयोग के संबंध में विशेष विस्तार नहीं है। सूर ने विस्तार-पूर्वक संयोग क्रीड़ाओं का वर्णन किया है, परन्तु स्थूल-स्थूल संयोग के चित्रण (सुरति, विपरीत आदि) भी आ गये हैं। कृष्ण-राधा को कामकलाविशारद चित्रित किया गया है। लगभग सभी स्थानों पर एक ही तरह की हाथापाई और सुरति का वर्णन है। सूर के काव्य पर लांच्छा इन्हीं प्रसंग के कारण है। सूर पर तीन दोष आते हैं :

(१) बालावस्था में शृङ्गार की कल्पना,

(२) गर्हित शारीरिक मिलन और उसके अनुभावों का विशद वर्णन,

(३) विपरीत;

परन्तु हम जानते हैं कि मिलन-प्रसंगों में सूर परम्परा से प्रभावित हैं—

(१) नायक नायिका का रूप धर लेता है, नायिका नायक का रूप धर लेती है।

(२) नायक दूती के रूप में भेष बदल कर आता है (देखिये गर्गसंहिता)।

(३) नायक अनेक प्रकार प्रच्छन्न रूप में नायिका से मिलता है। बाल्यावस्था में शृङ्गार की कल्पना के पीछे धार्मिक और आध्यात्मिक भावना है जिसकी विवेचना हम पहले कर चुके हैं। सूर ने शृङ्गाररति को नहीं, वरन् आध्यात्मिक रति को अपना विषय माना है। वह एक साथ वात्सल्यरति के उपासक नंद-यशोदा और मधुररति की भक्त गोपियों का चित्रण कर रहे हैं।

गोपियाँ कृष्ण को सर्वदा शैशव प्राप्त देखती हैं, यशोदा
वयस्क हो जाने पर भी उन्हें बालक मानती हैं। यह है शुद्ध
दृष्टिकोण। सूर साहित्य का पाठक इस विचित्र दृष्टिको
कारण ही भ्रम में पड़ जाता है। वह नहीं समझ पाता कि व
कृष्ण किस प्रकार गोपियों में प्रेम-वासना प्रदीप्त कर सके
एक ही साथ दो भिन्न दृष्टिकोणों के भक्तों के आराध्य का वि
होने के कारण ही यह भ्रामक परिस्थिति उत्पन्न हो गई है।
केवल शृंगारशास्त्र के दृष्टिकोण से देखा जाय तो सूरदास अव
ही दोषी ठहरेंगे परन्तु जब सूर स्पष्टतः आध्यात्मिक अभि
की अपेक्षा रखते हैं तो हम उनके काव्य को लौकिक भूमि
उतार कर उनके साथ अन्याय करते हैं।

गर्हित शरीर-मिलन और उसके अनुभावों का चित्रण
के लिये ठीक ही लांछना है। यहाँ वे ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और ज
देव की परम्परा का पालन कर रहे हैं। विपरीत रति के संबं
में भी यही बात कही जा सकती है। हमें यह समझ लेना चाहि
कि अकेले सूर ही इन दोषों के दोषी नहीं हैं। दम्पति के केलि
विलास को हरिदास और हितहरिवंश भी इसी रूप में उपस्थि
कर चुके थे। इस प्रकार का संयोग-चित्रण उस युग की कृष्ण
भक्ति की सामान्य प्रवृत्ति के भीतर आ जाता है। रीतिशास्
की दृष्टि से दैहिक मिलन और उसके अनुभावों का वर्णन अवश्य
ही वर्ज्य है। इससे वासना के सिवा किसी भी बड़ी चीज़ की
सृष्टि नहीं हो सकती।

सूरसागर में आलंबन के सौन्दर्य और उद्दीपन का विराट
वर्णन मिलेगा। इनके विषय में सूर प्राचीन काव्यरूढ़ियों और
परिपाटियों का बड़ी सतर्कता और तत्परता के साथ पालन कर
रहे हैं।

विप्रलंभ में मान के कई प्रसंग हैं। इनमें तीन सहेतु हैं और एक निर्हेतु कारणाभास जहाँ राधा कृष्ण के हृदय में प्रतिबिंब देख कर ही मान करने लगती है। शृङ्गारशास्त्र के ढंग से मान-मोचन के लिये दूती की योजना भी है। मानमोचन के कुछ ढंग शास्त्रीय हैं, कुछ मौलिक। इनके अतिरिक्त सूर ने राधा के भवन-प्रवास का वर्णन किया है परन्तु उतनी विशदता से नहीं, जितनी विशदता से गोपियों का, यद्यपि जो है, वह बड़ा मार्मिक है।

संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि राधाकृष्ण के प्रेम-प्रसंग के चित्रण में सूरदास ने काव्यशास्त्र को अपना आधार नहीं माना है। उन्हें प्रेरणा भी काव्यशास्त्र से नहीं मिली है। परन्तु आध्यात्मिक अर्थ की पुष्टि के लिये उन्होंने कुछ ऐसे प्रसंग रचे हैं जो शृङ्गारशास्त्र के अंग हैं जैसे मान, खंडिता। इनमें रीतिकाव्य का सहारा लेना आवश्यक था। इसी से इन प्रसंगों पर रीतिशास्त्र की स्पष्ट और व्यापक छाप है। आलंबन के सौन्दर्य-वर्णन में रीतिशास्त्र की मान्यताओं का मान लिया गया है। सूरसागर का बड़ा भाग आलंबन के सौन्दर्य-वर्णन से भरा है। इससे यह भ्रांति होती है कि सूर शृङ्गारकाव्य ही रच रहे हैं। वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। राधाकृष्ण का सौन्दर्य प्रकृत स्त्री-पुरुषों के सौन्दर्य से अधिक पूर्ण, अतः रहस्यमय है, परन्तु सूर एकदम शास्त्र की मान्यताओं की उपेक्षा किस प्रकार कर सकते थे? स्त्री-अंगों के उपमानों के संबंध में एक महान प्रपंच खड़ा हो गया था। उसके बाहर से रचना कैसे हो सकती थी? संयोग-शृङ्गार में भी शृङ्गारशास्त्र का विशेष प्रभाव नहीं। अधिक प्रसंग मौलिक हैं। विप्रलंभ और उद्दीपन में अवश्य सूरदास के सामने शास्त्र और परंपरा है।

परन्तु गोपियों के संबंध में परिस्थिति दूसरी है। गोपियों को लेकर सूर ने रूपक खड़े किये हैं, लीला-गान उद्देश्य नहीं है, चाहे

के आवश्यक अंग हैं। भागवत में उद्धव को दूत नहीं चित्रित किया गया, पत्र का तो नाम भी नहीं है। परन्तु सूर में स्पष्टतः शृङ्गार की अन्तर्धारा बह रही है। दूत (उद्धव) के आने पर गोपियों में प्रिय की स्मृति तीव्र हो जाती है, उनका हृदय व्यथा से भर जाता है—

तरुणी गईं सब बिलखाइ
जबहिं आए सुने ऊधो अतिहिं गईं भुराइ
परी व्याकुल जहाँ यशुमति गईं तहँ सब धाय
नीर नयनन बहत धार लई पोंछि उठाय
× × ×
भली भई हरि सुरति करी
पाती लिखि कछु श्याम पठायो यह सुनि मनहिं डरी

पाती के संबंध में अतिशयोक्ति है—

कोउ ब्रज बाँचत नाहिंन पाती।
कत लिखि पठवत नँदनंदन कठिन बिरह की काँती
नैन सजल कागज अति कोमल कर अँगुरी अति ताती
परसे जरै बिलोके भीजै दुहूँ भाँति दुख भाती

यहाँ स्पष्ट ही कवि की कल्पना रीतिशास्त्र के साहित्य द्वारा परिचालित हुई है। यही बात विप्रलंभ की उक्तियों में और भी स्पष्ट हो जाती है। सूर ने ऋतुओं आदि को स्पष्टतः उद्दीपन के रूप में रखा है—

अब वर्षा को आगम आयो
ऐसे निठुर भये नदनन्दन सदेशो न पठायो
बादर घोर उठे चहुँदिश ते जलधर गरज सुनायो
एकै शूल रहो प्रिय मेरे बहुरि नहीं ब्रज छायो
दादुर मोर पपीहा बोलत कोकिल शब्द सुनायो

दोनों प्रेमकथायें कवियों और गायकों की रचनाएँ हैं। राधा का तो भागवत में उल्लेख भी नहीं, यद्यपि राधा शब्द का प्रयोग अवश्य है। कदाचित् इसी प्रयोग को लेकर "राधा" की सृष्टि की प्रेरणा हुई। सूर की राधाकृष्ण की कथा ब्रह्मवैवर्त पुराण, गर्गसंहिता, जयदेव, और विद्यापति की कथाओं को स्वीकार करके आगे बढ़ती है, वस्तुतः उनकी कथा में अद्भुत पूर्णता है। इसकी स्थापना मौलिक खंडकाव्य के रूप में हुई है और उस पर रीतिशास्त्र का कुछ भी प्रभाव नहीं है। गोपीकृष्ण की कथा आध्यात्मिक भूमि पर प्रतिष्ठित है। परन्तु कुछ अंशों में स्पष्टतः रीतिशास्त्र से सहारा लिया गया है। इससे कथा और भी हृदय-ग्राहक हो गई। राधा के संबंध में कुछ सामग्री सूर को मिली थी, परन्तु गोपियों और कृष्ण का संबंध उनका अपना निर्माण किया है। भागवत की गोपियों में बालकृष्ण के प्रति रति नहीं है, न कृष्ण की गोपियों से कामकेलि का उल्लेख है। केवल चीर-हरण, रास और गोपिका-विरह ही भागवत में है। इन स्थलों के अतिरिक्त अनेक स्थल सूर ने स्वयं आविष्कार किये हैं। उन्होंने गोपियों और कृष्ण के संबन्ध को भागवत की अपेक्षा कहीं अधिक बृहद् चित्रपटी पर रखा है। इस मौलिकता के द्वारा ही सूर की सख्य और मधुर भक्तिभावना का प्रकाशन हो सका है।

७

सूर के काव्य में आध्यात्मिकता

सूरदास के संबंध में जहाँ अनेक भ्रांतियाँ हैं, वहाँ एक भी है कि उनका काव्य उनकी ऐन्द्रियता का प्रच्छन्न रूप है। उसमें कवि की वासना के स्वर उसके धर्मभाव के ऊपर बोल रहे हैं। राधाकृष्ण और गोपियों के स्थूल प्रेमविलास (जो सं... शृङ्गार के भीतर है) ने यह भ्रांति उत्पन्न कर दी है। इ... अतिरिक्त विप्रलंभ भी शृङ्गारशास्त्र पर खड़ा किया गया ... उद्धव दूत है। पाती भी सूर की अपनी उपज है। भागवत में उस... अभाव है। स्पष्ट ही सूर यहाँ शृङ्गार-काव्य की परिपाटी ... प्रभावित हैं। विप्रलंभ के सभी संचारियों का विस्तार सूरसा... में मिलेगा।

परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पिछली तीन शताब्दियों से सू... का काव्य आध्यात्मिक साधना रहा है। इसने भगवत्साक्षात्का... में सहायता ही नहीं दी है, वह उसका प्रधान साधन—बहुतों ... लिए एकमात्र साधन—रहा है। ऐसी दशा में यह काव्य एक पहेली हो जाता है। पिछले अध्यायों में हमने सूर के काव्य के धार्मिक धरातल को सामने रखा है—कि उस पर शुद्धाद्वैत का कितना प्रभाव है? उसे धार्मिक काव्य कहाँ तक कहा जाय? परन्तु शृंगार के विस्तार ने जो समस्या खड़ी कर दी है, वह अभी बनी ही है।

यदि हम चाहें तो सारे काव्य को एक बड़े रूपक के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। कृष्ण परब्रह्म हैं। राधा उन्हीं की शक्ति या

प्रकृति हैं। गोपियाँ जीवात्माएँ हैं। मुरली योगमाया है या भगवान की "पुष्टि" है जो मनुष्य को जागरूक बना कर, संसार से नाता छुड़ा कर, ब्रह्म की ओर ले जाती है। रास जीवात्मा का परमात्मा के साथ आनन्दमय लय होना ही है। इस अवस्था में जीवात्मा-परमात्मा में द्वैत नहीं रहता। इस रास के लिए ही सारी साधनाएँ हैं। इसका माधुर्य अलौकिक है, अनिर्वचनीय है। इस रास की प्राप्ति कैसे हो? एक ही मात्र उपाय है—आनन्द-भाव से आत्मसमर्पित होकर कृष्ण (ब्रह्म) की कृपा पर अवलंबित रहें (पुष्टिभाव)। भागवत के चीरहरण में आनन्दभाव की आवश्यकता की ही पुष्टि नहीं कि गई है उसमें नग्न जलक्रीड़ा का निषेध भर है। यह प्रसंग रास की भूमिका है क्योंकि यहीं कृष्ण गोपियों को पतिभाव से मिलन का वरदान देते हैं। परन्तु सूर ने इस प्रकार का निषेध नहीं किया। गोपियाँ आनन्दभाव से अपनी गोप्यतम निधि भगवान को अर्पित कर दें—तभी भगवान का नैकट्य प्राप्त हो, यही रूपक है। इसी से सूर के इस प्रसंग में आध्यात्मिकता स्पष्ट है। साथ ही सूर एक नया प्रसंग छेड़ देते हैं कि कृष्ण सहस्रों रूप रख कर अदृश्य भाव से प्रत्येक गोपी की पीठ मलते हैं। तात्पर्य है कि ब्रह्म तो सदैव ही जीवात्मा के इतने निकट है कि उसका कोई भी भाव उससे गोप्य नहीं। बाधा भक्त के मन की है जो इस बात को भूल जाता है और जान कर चकित होता है। केवल तमाशे भर के लिये इस नवीन उद्‌भावना की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु सूर एक विशेष अर्थ उपस्थित करना चाहते हैं। वास्तव में चीरहरणलीला के इन दोनों प्रसंगों को पढ़ कर ही एक अर्थ की सिद्धि होती है।

इसी तरह दानलीला की बात लीजिये। उसमें भी यही मंतव्य है कि भक्त अपना अन्यतम भाव (सर्वस्व) भगवान के अर्पण करे। यह भाव 'गोरस' के श्लेष द्वारा पुष्ट होता है। गोरस के

ीं कर पाता कि किधर जाय। अंत में भगवान स्वयं अनुग्रह
: उसे संसार के पथ से हटा कर अपनी ओर खींच लेते हैं।
उसका (परमात्म सुख का) अनुभव कर लेता है, वह उस
ी की तरह हो जाता है—

घट भरि दियौ स्याम उठाइ
नैकुँ तन की सुधि न ताकौं चली ब्रज समुहाइ
स्याम सुन्दर नयन भीतर रहे आइ समाइ
जहाँ जहँ भरि दृष्टि देखै तहाँ तहाँ कन्हाइ
उतहिं तै एक सखी आई कहति कहा भुलाइ
सूर अब ही हँसत आई चली कहा गँवाइ

र्थात्, सूर के शब्दों में द्वैत भूल कर अद्वैत भाव में स्थिर
 जाता है—

जनु बारिधि जलबूँद हिरानी

त में जीवात्मा को अपनी भूल ज्ञात होती है—

मेरे जिय ऐसी आनि बनी
बिनु गोपाल और नहिं जानैं सुनि मोसौं सजनी
कहा काँच संग्रह के कीन्हें हरि छु अमोल कनी
विष सुमेरु कछु काज न आवै अमृत एक कनी
मन बच कम मोहि और न भावै ... स्याम धनी
सूरदास स्वामी के ... , अपनी

स समय उसका यह

... मोहिं सौ ... नि

गया है। तत्व एक है रूपक के माध्यम इतने! रास के सम्बन्ध में
श्री नंददुलारे वाजपेयी लिखते हैं—"रास की वर्णना में सूरदास
का काव्य परिपूर्ण आध्यात्मिक ऊंचाई पर पहुँच गया है।
केवल श्रीमद्भागवत की परम्परागत अनुरति कवि ने नहीं की
है, वरन् वास्तव में वे अनुपम आध्यात्मिक रस से विमोहित
होकर रचना करने बैठे हैं। उन्होंने रास की जो पृष्ठभूमि
बनाई है, जिस प्रशांत और समुज्ज्वल वातावरण का निर्माण
किया है, पुनः रास की जो सज्जा, गोपियों का जैसा संगठन
और कृष्ण की ओर सब की दृष्टि का केन्द्रीकरण दिखाया है
और रास की वर्णना में संगीत की तल्लीनता और नृत्य की यथार्थ
गति के साथ एक जागरूक आध्यात्मिक मूर्च्छना, अपूर्व प्रसन्नता
के साथ प्रशांति और दृश्य के चटकीलेपन के साथ भावना की
तन्मयता के जो प्रभाव उत्पन्न किये हैं, वे कवि की कला-कुशलता
और गहन अतर्दृष्टि के द्योतक हैं" । (सूरसंदर्भ पृ० २६) सच तो
यह है कि उपरोक्त सभी प्रसंगों के सम्बन्ध में यही बात कही
जा सकती है। इनमें सूर ने अपने विषय से अत्यंत निकट
का तादात्म्य स्थापित कर लिया है; रहस्य की भावना भी, जो
रास में उपस्थित थी, जाती रही है। वे स्वयं लीला में भाग
लेने लगे हैं। इस प्रकार वे भावसृष्टि, उल्लास, नृत्यक्रीड़ा,
गीत, छंदालय—सभी के सहारे अपनी आध्यात्मिक व्यंजना
सामने लाते हैं। वल्लभाचार्य ने लिखा है कि नित्य लीला में भाग
लेने वाले भक्त के वश में भगवान् रहते हैं, यद्यपि वे कर्म में भी
अकर्मी हैं। यहाँ सूर इसे ही चित्र द्वारा खड़ा करते हैं—

दुरि रही इक खोरि ललिता उततैं आवत श्याम
धरे भरि अकवारि औचक आइ कै व्रजबाम
बहुत ढीठो दै रहे हौ जानिवी हम आज
राधिका दुरि हँसति ठाढ़ी निरखि पियमुखलाज

सबै काहु सुनि कर तैं बाहु रह्यो तह बीर
सुनि बेनि माँग पारे नैन आँजि अनैंगि
मद कर तैं छाँडि मोहन नारि सब पहुँचाइ
गीत सुनि कर प्रीति बोलनि मनी मैं मद माँगि

परन्तु यह मिलन तो आगे की भूमिका है। सूरदास उनके
प्रेम की सच्ची अभिव्यक्ति संयोग में नहीं वियोग में है जो प्र
की महान दशा है। अतः इनमें मिलन-प्रमोद के बाद विर
साधना आरंभ होती है। गोपियों की मदमत्तता, उनकी प्र
प्रेम-भावना, उनका अनन्यभाव, उनकी विरह की मादन, म
का उनके प्रेम में योग देना—ये सब बातें मिलकर सूर के विर
को अत्यंत विराट चित्रपटी पर रखती हैं। इससे गोपियों के
और उसके आलंबन में रहस्यमयता और आध्यात्मिकता
आना निश्चित है। उस गहरी आकुलता के लिये जो भ्रमरगी
और गोपिका-विरह में प्रकट हुई है, वह अत्यंत निकट का के
विलास आवश्यक था जो सूर पर लांछन है। उतने मिलनोल्ला
निकट के संबंध के बाद यह वियोग-साधना! यहीं पर सू
गोपियों को छोड़ देते हैं। विरह ही तो सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मि
साधना है। कृष्ण लौटते हैं, परन्तु गोपियों को संगसुख फिर
नहीं मिलता, न उन्हें चाहिये ही। अब रास, होली आदि मन के
भीतर होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सारे सूरसागर में जहाँ एक ओर वल्लभाचार्य के आदर्शों को निभाया गया है—नंद, यशोदा और गोपियों के महान् सुख और महान् दुःख का वर्णन किया गया है—वहाँ स्वतंत्र रूप से कई रूपक जोड़ कर आध्यात्मिक अर्थों का विस्तार भी किया गया है। ये आध्यात्मिक अर्थ हैं—

(१) सम्पूर्ण आत्मसमर्पण—मन-वच-क्रम से ही नहीं, यों के सुखों से भी (दानलीला, जलक्रीड़ा)

(२) अत्यंत आनन्द भाव जिसमें ईश्वर सम्पूर्णतः व्यक्तिगत जाये (राधा का मान)

(३) विरह की साधना (खंडिता, गोपिका विरह)

(४) आदर्श मानसिक मिलन की स्मृति (रास, होली जलक्रीड़ा आदि)

(५) गर्वहीनता (रास)

(६) आध्यात्मिक संदेश की शक्ति और आकर्षण "संसार" द्वन्द (पनघट)

महाप्रभु ने कहा है "संसार" है अहंमता और ममता। आत्मसमर्पण से दोनों का नाश हो जाता है। आत्मसमर्पण का होता है ईशानुकंपा (पुष्टि)। उसके द्वारा निरंतर प्रेम (प्रीति) की प्राप्ति होती है जिसकी महिमा गाते सूर थकते हैं—

ऊधौ प्रीति न मरन बिचारै
प्रीति पतंग जरै पावक परि जरत अंग नहिं टारै
प्रीति परेवा उड़त गगन चढ़ि गिरत न आप सम्हारै
प्रीति मधुप केतकी कुसुम बसि कण्टक आपु प्रहारै
प्रीति जानु जैसे पयपानी जानि अपनपो जारै
प्रीति कुरंग नादरस लुब्धक तानि-तानि सर मारै
प्रीति जान जननी सुत कारन को न अपनपो हारै
सूर स्याम सौं प्रीति गोपिन की कहु कैसे निरुवारै

प्रीति का रूप है—

नाहिंन रह्यौ
नंदनन्दन अछत

चलत चितवत, दिवस जागत, सपन सोवत राति
हृदय तें वह स्याम मूरति छिनन इत उत जाति

यह "श्याम मूरति" जो भक्त की साधना का आलंबन है
अत्यंत रहस्यात्मक है। राधा को छोड़ कर कोई अन्य गो
इस तक नहीं पहुँच सकती। इसकी योजना सूर राधा के द्वा
कहला कर कराते हैं कि वे तो नंदनंदन को देख ही नहीं स
एक ही अंग देखने में लग जाती है। राधा गोपियों से कहत

तुम देखे मैं नहिं पत्यानी
मैं जानी मेरी गति सबही यहै साँच अपनै मन आ
जो तुम अंग अंग अवलोक्यौ धन्य धन्य अस्तुति मुखना
मैं तौ एक अंग अवलोकति दोऊ नैन गये भरि पा
कुंडल झलक कपोलनि आभा इतनेहि माँझ बिका
एकटक रही नैन दोउ रूँधे सूरश्याम न विका

श्याम सौं काहे की पहचानि
निमिष निमिष वह रूप न वह छवि रति कीजै जेहि जा
इकटक रहत निरन्तर निसिदिन मन मति सौं चित सा
एको पल सोभा की सीवा सकति न उर महँ आ
समुझि न परे प्रगट ही निरखति आनँद की निधि खा
सखि यह विरह संजोग कि समरस दुख-सुख लाभ की हा
मिटति न घृत तें होम-अग्नि रुचि सूर सुलोचन या
इत लोभी उत रूप परम निधि कोउ न रहत मिति मा

कब री मिले स्याम नहिं जानौ
तेरी सौं कहि कहति सखी री अबहूँ नहिं पहिचानौ
खरिक मिले की गोरस बेंचत की अबहीं की कालि
नैननि अंतर होत न कबहूँ कहत कहा री आलि
एको पल हरि होत न न्यारे नीकै देखे नाहिं
सूरदास प्रभु टरत न टारे नैननि सदा बसाहिं

: के आध्यात्मिक की साधना का आदर्श है "व्रजनारि"—

> श्याम रंग राची ब्रजनारि । और रंग सब दीन्हो डारि
> कुसुम रङ्ग गुरुजन पितु माता । हरित रङ्ग भैनी अरु भ्राता।
> दिना चारि मैं सब मिटि जैहै । श्याम रङ्ग अजरामर रैहै
> उज्ज्वल रङ्ग गोपिका नारी । स्याम रङ्ग गिरवर के धारी
> स्यामहिं में सब रङ्ग बसेरौ । प्रगट बताइ देउँ कहि बेरौ

न्तु प्रश्न यह होता है कि क्या इस अनन्यावस्था को इसी रूप प्रगट किया जा सकता था, या यह वाच्छनीय था । यह कहना पड़ेगा कि जीव-ब्रह्म की इस पूर्ण मिलन अथवा अद्वैतावस्था रूपक दूसरा नहीं हो सकता था । जहाँ ब्रह्म के लिये पुरुष ाम, कृष्ण) को स्वीकार किया गया, जहाँ आत्मा के लिये ाम की बहुरिया" या गोपी कहा गया, वहाँ "अद्वैतावस्था" भी उलानी होगी । कबीर ने कहा भी है—

> एक मैं एक है जो नहिं सोवे, केहि विधि मिलना होई

'कथा' कह रहे थे । अतः उन्हें स्पष्ट रीति से चुम्बन, आलिं- कनकुचस्पर्श, और अंततः संयोगविलास का वर्णन करना । इसके सिवा बात यह है कि सूर के रूप जुदे-जुदे नहीं खड़े ये सब एक कथा में सूत्रबद्ध हैं, जिससे सब ले देकर एक स्थूल त्व की छाया बचाई ही नहीं जा सकती । यह भी हो सकता क सूर इस विषय में जयदेव के काव्य से प्रभावित हों, विशेष- राधाकृष्ण के केलिविलास के विषय में । गोपियों की नारणा उन्होंने स्वयं की, परन्तु यहाँ भी उन्होंने जयदेव की शैली ग्रहण की । वास्तव में सूर दो आध्यात्मिक साधनाओं स्वीकार कर रहे हैं । एक, वल्लभाचार्य की बालकृष्ण की ा, लीलागान, नंद-यशोदा-गोपियों के मिलन-वियोग के त्मिक अनुभव की साधना । दूसरे, उस युग की सामान्य

(१) वल्लभाचार्य ने गोपियों को कृष्ण की शक्ति[१], श्रुति अवतार[२] और मधुरात्मा लक्ष्मी कहा है[३]। सूर ने विस्तारपूर्वक गोपियों को कृष्ण की शक्ति या श्रुति का अवतार न कहा है। इसी अध्याय में हम पहले यह बात सिद्ध कर चुके हैं।

(२) वेणु को वल्लभाचार्य नामलीला का प्रतीक मानते हैं[४]। सूर भी उसे अप्राकृतिक, अलौकिक और रहस्यमय ही मानते हैं। नामलीला का आस्वाद ही भगवान के प्रति पहला आकर्षण है जिसे वेणुवादन रास की भूमिका है।

(३) रास, फगुआ, होली, निकुंजविहार—इन सबमें सूर वल्लभाचार्य की "नित्यलीला" का ही वर्णन किया है। य लौकिक लीला है ही नहीं। ब्रह्म और जीव का निरंतर सम्बंध है। इस लीला में भाग लेना ही मोक्ष है[५]। "पुष्टि" (ईशानुग्रह) द्वारा ही इन लीलाओं में भाग लिया जा सकता है जैसे गोपियाँ लेती हैं।

(४) शुद्धाद्वैत में माया का स्थान नहीं है, परन्तु फिर भी वल्लभाचार्य उसके अस्तित्व से एकदम इंकार नहीं कर सके हैं। उन्होंने माया की दो परिभाषाएँ दी हैं—

> निराकारमेव ब्रह्म माया जवनिकाच्छन्न
> या जगत्कारण भूता भगवच्छक्तिः सा योगमाया।

१—स हो वाच न हि नारायणो देव इत्युपक्रम्य मधुरास्वरूपं निरूप्य स्त्रियो यत्रासौ संस्थितः कृष्णः स्त्रीभिः शक्तिा मनाहित।

२—अस्मिन्नर्थे श्रुत्यन्तर रूपाणां गोपिकानां......।

३—बहुवचनेन समुदायरूपा सर्वनारायणेन सूचिता,तदेतास्तत्र एव मन्तव्याः।

४—नामलीलारूपं वेणुनाद' निरूपयति।

५—न हि लीलायां किञ्चित्प्रयोजन अस्ति। लीलाय एव प्रयोजनत्वात्। ईश्वरत्वादेव न लीला पर्यनुयोक्तु शक्या। सा लीला कैवल्यं मोक्षः।

सूरदास ने इन परिभाषाओं को समझा है, परन्तु उन्होंने माया की प्रचलित कल्पना को ही स्थान दिया है जो गुणों के द्वारा संसार की उत्पत्ति, अवस्थिति और लय का कारण है, जो ब्रह्म की दासी है, अविद्या और विद्या जिसके दो रूप हैं, जो कंचन और कामिनी आदि का रूप धर कर मनुष्य को घुमाती है। तुलसी और सूर की माया की कल्पना में कोई भेद नहीं है।

१—सूर ने प्रत्येक लीला के पहले उसका आध्यात्मिक संकेत उपस्थित कर दिया है। इस संकेत को न समझ कर सूर पर उच्छृंखल शृङ्गार का दोष लगाना अनुचित है। "खंडिता" प्रसंग के अंत में सूर कहते हैं—

राधिका गेह हरिदेह वासी। और त्रिय घरन घर तनु प्रकासी
ब्रह्म पूरन एक द्वितिय नहिं कोऊ। राधिका सबै हरि सबै कोऊ
दीप से दीप जैसे उजारी। तैसे ही ब्रह्म घर घर बिहारी
खंडिता वचन-हित यह उपाई। कबहूँ तहँ जात कहुँ नहिं कन्हाई
जन्म को सफल हरि इहै पावैं। नारि रस वचन श्रवणन सुनावैं

और इसी प्रकार रासारंभ के पहले—

(१) जाको व्यास वर्णत रास
है गधर्व विवाह चित्त दै सुनो, विविध विलास

(२) रास रसलीला गाइ सुनाऊँ
यह यश कहै सुनै मुख श्रवणन तिन चरणन शिर नाऊँ
कहा कहौ वक्ता-श्रोता-फल इक रसना क्यों गाऊँ
अष्टसिद्धि नवनिधि सुखसम्पति लघुता करि दरशाऊँ
जो परतीति होइ हिरदय में जगमाया धिग देखै
हरिजन दरश हरिहि सम पूजै अंतर कपट न मेषै
धनि धनि वक्ता तेहि धनि श्रोता श्याम निकट हैं ताके
सूर धन्य तिनके पितु माता भाव भजन है जाके

(१) वल्लभाचार्य ने गोपियों को कृष्ण की शक्ति[1], श्रुति का अवतार[2] और समुदायरूपा लक्ष्मी कहा है[3]। सूर भी विस्तारपूर्वक गोपियों को कृष्ण की शक्ति या श्रुति का अवतार मानते हैं। इसी अध्याय में हम पहले यह बात सिद्ध कर चुके हैं।

(२) वेणु को वल्लभाचार्य नामलीला का प्रतीक मानते हैं[4]। सूर भी उसे अप्राकृतिक, अलौकिक और रहस्यमय ही समझते हैं। नामलीला का आस्वाद ही भगवान के प्रति पहला आकर्षण है जैसे वेणुवादन रास की भूमिका है।

(३) रास, फगुआ, होली, निकुंजविहार—इन सबमें सूर ने वल्लभाचार्य की "नित्यलीला" का ही वर्णन किया है। यह लौकिक लीला है ही नहीं। ब्रह्म और जीव का निरंतर का संबंध है। इस लीला में भाग लेना ही मोक्ष है[5]। "पुष्टि" (ईशानुग्रह) द्वारा ही इन लीलाओं में भाग लिया जा सकता है जैसे गोपियाँ लेती हैं।

(४) शुद्धाद्वैत में माया का स्थान नहीं है, परन्तु फिर भी वल्लभाचार्य उसके अस्तित्व से एकदम इंकार नहीं कर सके हैं। उन्होंने माया की दो परिभाषाएँ दी हैं—

निराकारमेव ब्रह्म माया जवनिकाच्छन्नम्
या जगत्कारण भूता भगवच्छक्तिः सा योगमाया।

१—स हो वाच तं हि नारायणो देव इत्युपक्रम्य मथुरास्वरूपं निरूप्य निबद्धे यत्रासौ संस्थितः कृष्णः स्त्रीभिः शक्तिया समाहित।

२—श्रुतिरूपैं श्रुत्यन्तर रूपाणां गोपिकानां......।

३—बहुवचनेन समुदायरूपा लक्ष्मीरप्यनेन सूचिता,तदेवात्मन एव रमणानः।

४—नामलीलारूपं वेणुनादं निरूपयति।

५—न हि लीलायां किंचित्प्रयोजन अस्ति। लीलाम एव प्रयोजनत्वात् ईश्वरत्वादेव न लीला पर्यनुमोक्तुं शक्या। सा लीला कैवल्यं मोक्षः।

सूरदास ने इन परिभाषाओं को समझा है, परन्तु उन्होंने माया की प्रचलित कल्पना को ही स्थान दिया है जो गुणों के द्वारा संसार की उत्पत्ति, अवस्थिति और लय का कारण है, जो ब्रह्म की दासी है, अविद्या और विद्या जिसके दो रूप हैं, जो कंचन और कामिनी आदि का रूप धर कर मनुष्य को घुमाती है। तुलसी और सूर की माया की कल्पना में कोई भेद नहीं है।

१—सूर ने प्रत्येक लीला के पहले उसका आध्यात्मिक संकेत उपस्थित कर दिया है। इस संकेत को न समझ कर सूर पर उच्छृंखल शृङ्गार का दोष लगाना अनुचित है। "खंडिता" प्रसंग के अंत में सूर कहते हैं—

राधिका गेह हरिदेह वासी। और त्रिय घरन घर तनु प्रकासी
ब्रह्म पूरन एक द्वितिय नहिं कोऊ। राधिका सबै हरि सबै कोऊ
दीप से दीप जैसे उजारी। तैसे ही ब्रह्म घर घर विहारी
खंडिता-वचन-हित यह उपाई। कबहूँ तहँ जात कहुँ नहिं कन्हाई
जन्म को सफल हरि इहै पावैं। नारि रस वचन श्रवणन सुनावैं

और इसी प्रकार रासारंभ के पहले—

(१) जाको व्यास वर्णत रास
है गधर्व विवाह चित्त दै सुनो, विविध विलास

(२) रास रसलीला गाइ सुनाऊँ

यह यश कहै सुनै मुख श्रवणन तिन चरणन शिर नाऊँ
कहा कहौं बक्ता-श्रोता-फल इक रसना क्यों गाऊँ
अष्टसिद्धि नवनिधि सुखसम्पति लघुता करि दरशाऊँ
जो परतीति होइ हिरदय में जगमाया धिग देखै
हरिजन दरश हरिहि सम पूजै अंतर कपट न मेखै
धनि धनि बक्ता तेहि धनि श्रोता श्याम निकट हैं ताके
सूर धन्य तिनके पितु माता भाव भजन है जाके

८

सूरदास का धार्मिक काव्य

सूरदास का काव्य काव्य की सीमा को लाँघ कर उसी तरह धर्म के क्षेत्र में पहुँचा जाता है, जिस तरह तुलसी का काव्य, विशेषतः रामचरितमानस जो श्रेष्ठ काव्य होते हुए भी भक्तों के लिए आध्यात्मिक साधना का सर्वोत्तम सहारा है। परन्तु कुछ आलोचकों को सूरदास के काव्य को धार्मिक काव्य कहने में संकोच है। इसका कारण स्पष्ट ही है—

(१) उसमें नैतिक भावनाओं, आचार-विचार, विधिनिषेध को स्थान नहीं मिला है, जिस प्रकार रामचरितमानस में मिला है। शताब्दियों से धर्म और नैतिकता के अटूट संबंध और धर्म की पूतकारिणी शक्ति की जो भावना जनता में चली आ रही है, वह सूर के काव्य के विरुद्ध पड़ती है।

(२) उसमें राधाकृष्ण और गोपीकृष्ण के संबंध को लेकर लौकिक शृङ्गार के ऐसे वर्णन मिलते हैं जो नीतिवादियों में एकदम जुगुप्सा उत्पन्न कर देते हैं। वे आश्चर्य में पड़ जाते हैं कि इस प्रकार के स्थूल संयोग के चित्रणों का धर्म से संबंध ही क्या हो सकता है। जहाँ मर्यादा नहीं, संयम, नहीं घोर शृङ्गार है, उसे धार्मिक काव्य कैसे कहा जाय? आखिर धार्मिक काव्य में कुछ संदेश तो होना चाहिये। संदेश न भी हो तो कोई बात नहीं, उच्च श्रेणी की आत्माभिव्यक्ति होनी चाहिये जैसी मीरा के काव्य में है।

परन्तु वास्तव में दोनों दृष्टिकोण दूषित हैं, भ्रांत हैं। सूरदास के काव्य में नैतिक भावनाओं, आचार-विचार और विधि-निषेध को जिस कारण से स्थान नहीं मिला, उसे हम पहले लिख आए हैं। सूरदास इनकी आवश्यकता स्वीकार करते हैं (देखिये विनय के पद) परन्तु वे इनसे ऊपर उठ कर एक दूसरा ही मार्ग सामने रखते हैं जहाँ भक्त भगवान का सीधा और इतने निकट का संबंध स्थापित हो जाता है कि इस प्रकार की भावनाओं पर बल देने की आवश्यकता ही नहीं रहती। प्रत्येक धार्मिक काव्य प्रणेता के दार्शनिक विचारों से प्रभावित होता है—उसके प्रेम या भक्ति का आश्रय कौन है, कैसा है, उसके साथ भक्त का सम्बन्ध किस प्रकार का है। सूरदास लीलामय, प्रेममय, राधापति, गोपी-वल्लभ कृष्ण से अनन्य भाव से सखा का सम्बन्ध रखते हैं, अतः काव्य में मर्यादा को उस तरह स्थान नहीं मिलता जिस तरह तुलसी के काव्य में जो रावणादि दाशरथि राम से सेवक का सम्बन्ध रखते हैं। दूसरे जहाँ तुलसी की भक्ति वैधी है, वहाँ सूरदास की भक्ति रागानुगा है। इन दोनों कारणों से दोनों के भक्ति काव्यों में भी भेद हो जाना चाहिये था।

इसके अतिरिक्त सूर के काव्य में आत्माभिव्यक्ति का कोई निश्चित रूप मिलना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है यद्यपि विनयपदों को छोड़ कर भी स्थान-स्थान पर आत्माभिव्यक्ति मिलती है, विशेषतय: पद की अंतिम पंक्ति में, जैसे

> सूरदास को ठाकुर ठाढ़ो हाथ लकुट लिए छोटी
> सूर कितौ मन सुख पावत है देखे स्याम तमाल
> सूरदास बलि बलि जोरी पर नन्दकुंवर वृषभानु दुलरिया
> सूरदास प्रभु के गुन ऐसे दधि के माट भूमि ढरकाए
> सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि बिलसहु स्याम सुजान
> सूरदास स्वामी पियप्यारी झूलत हैं झकझोल, आदि

यह आत्माभिव्यक्ति उस ढंग की नहीं है जैसी तुलसी और मीरा में है और "विलमहु स्याम सुजान" जैसी भावना नीतिवादी उचक सकते हैं। कारण यह है कि जिस प्रकार आत्माभिव्यक्ति नीतिवादी चाहते हैं उसे तो महाप्रभु ने पद ही "घिघियाना" बता दिया था, अतः सूर उस ओर नहीं सकते थे। उनको तो कथा का सहारा मिल गया था जो मीरा अस्वीकार कर दिया था। इस कथा में उनको अपनी आत्माभि व्यक्ति के लिये पर्याप्त स्थान था। वे वात्सल्य, सख्य और मधु भावों के उपासक थे। उनके लिये नंदयशोदा, गोपीगोप, गोप बाला, राधाकृष्ण और गोपीकृष्ण के चरित्र और तत्संबं कथा-प्रसंग खुले थे। इसी से उन्होंने प्रच्छन्न रूप से इन्हीं द्वारा अपनी भक्तिभावना का प्रकाशन किया। नंदयशोदा और गोपीगोप के प्रसगों में सूर के वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति हुई है, सुदामा, सुबल आदि गोप-बालकों को लेकर सूर का सख्य भाव प्रगट हुआ है और राधाकृष्ण एवं गोपीकृष्ण को लेकर मधुर भाव की भक्ति चरितार्थ हुई है। अनेक पद ऐसे हैं जिन्हें हम संदर्भ से हटा कर सीधे सूर के मुख में रख सकते हैं, जैसे—

सोभित कर नवनीत लिए

घुटुरुन चलत रेनुतनुमंडित मुख दधि लेप किए
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए
लट लटकनि मनौ मत्त मधुपगन मादक मदहिं पिए
कठुला कंठ वज्र केहरिनख राजत रुचिर हिए
धन्य सूर एकौ पल यह सुख का सत कल्प जिए

हरि जू की बाल छवि कहौं बरनि

सकल सुख की सींव कोटि मनोज-सोभा-हरनि

भुज भुजग, सरोज नयननि, बदन विधु जित लरनि
रदे बिवरनि सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि
मजु मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूषन भरनि
मनौं सुभग सिंगार सिसुतरु फल्यौ अद्‌भुत फरनि
चलत पद प्रतिबिंब मनि-आँगन घुटुरवनि करनि
जलज-सपुट सुभग छवि भरि लेति उर-जनु धरनि
पुन्यफल अनुभवति सुतहिं विलोकि कै नन्दघरनि
सूर प्रभु की बसी उर किलकनि मधुर लरखरनि

(वात्सल्य)

छबीले मुरली नेंक बजाउ
बलिबलि जात सखा यहि कहि कहि
अधर-सुधा-रस प्याउ
दुर्लभ जन्म, दुर्लभ वृंदावन,
दुर्लभ प्रेम - तरङ्ग
ना जनिये बहुरि कब ह्वै है
श्याम तुम्हारो संग

(सख्य)

कृष्ण के तरुण रूप और उनकी शृङ्गार चेष्टाओं के प्रति अनेक आसक्तिमय पद हैं जिनमे सूर स्वयं स्पष्ट रूप से आनंद ले रहे हैं। दृष्टकूट सम्बन्धी कितने ही पद इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं यद्यपि उनकी सामग्री नीतिवादी आलोचकों को उलझन मे अवश्य डाल देगी।

(मधुर)

परन्तु वास्तव में सारे सूरसागर में इन्हीं तीन भावों से सूर विराजमान हैं। कहीं नंदयशोदा के रूप मे, कहीं गोप-बालकों के, कहीं गोपियों के। जिस तन्मयता से सूर ने पद रचे हैं, उससे

परिचित होकर कोई भी यह नहीं कह सकता कि सूर ने तटस्थ भाव से चरित्रों के मुख में उन्हें रख दिया है। इसी तन्मय और सूर की व्याप्ति के कारण सूरसागर में चरित्रों का वैसा विशिष्ट रूप खड़ा नहीं होता जैसा रामचरितमानस में या किसी भी चरित्र-काव्य में। सारे चरित्र तीन बड़े विभागों में बँट जाते हैं जिनका चरित्रनायक से क्रमशः वात्सल्य, सख्य और मधुर प्रेम का नाता है। उनमें परस्पर किसी प्रकार की श्रेणी या विभाजन संभव नहीं है। सब कृष्ण के संग में एक ही प्रकार से सुखी हैं उनके विछोह में एक ही प्रकार से दुःखी हैं। इसी से मोटे रूप में हम कह सकते हैं कि सूरसागर में कृष्ण के संयोग और वियोग के सुख-दुःख-पूर्ण वर्णन हैं। सूर की अपनी भावना इन वर्णनों में इतनी मिल जाती है कि जैसे वे ही उस संयोग और विछोह का अनुभव कर रहे हों।

अब जब यह बात है तो नीतिवादियों का तर्क ही ढह जाता है। स्पष्ट है कि उन्हें एक नए प्रकार के धार्मिक काव्य का सामना करना पड़ रहा है जिससे उनकी आलोचना कुंठित हो जाती है। वे मीरा के काव्य और ईसाइयों के सोलोमन के गीतों को धार्मिक काव्य या भक्ति काव्य कह सकते हैं परन्तु इस कथात्मक आत्माभिव्यक्ति को समझ नहीं पाते। कथा को सूरदास से बाहर प्रतिष्ठित कर वे भ्रांति में पड़ जाते हैं। फिर भी जहाँ तक कृष्ण की बाल-लीलाओं और गोप-बालकों के साथ वन-लीलाओं का सम्बन्ध है, उन्हें कुछ कहना नहीं है। कहना तो उन्हें है कृष्ण की मधुर लीलाओं के सम्बन्ध में।

जो अधिक सतर्क और सहिष्णु हैं वे इन लीलाओं को रूपक कह कर छुट्टी पा जाते हैं। कृष्ण ब्रह्म हैं, राधा उनकी शक्ति है या प्रकृति है या ईश्वरप्राप्त जीव है, गोपियाँ जीवात्माएँ हैं। चीरहरण-लीलाओं में यह दिखाया गया है कि भगवान से

ाप्य कुछ भी नहीं और एक ही ब्रह्म समस्त जीवात्माओं को एक
ा साथ गम्य है। दानलीला का अर्थ है कि अपना सर्वोत्तम
ाव, सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति भक्त भगवान को अर्पण करने में तनिक
ी विलम्ब न करे। रासलीला में जहाँ एक ओर ब्रह्म की अखण्डता
ौर एक ही समय में अनेक भक्तों को प्राप्ति का संदेश है, वहाँ
र्वहीनता का उपदेश भी है। राधा के मान में कहा गया है कि
हंमन्यता की छाया भी भगवान को भक्त से दूर कर देती
ै अथवा भक्त को इतना भी विछोह कठिन होता है कि वह
गवान के हृदय में अपनी छाया भी नहीं देख सकता। बहुना-
ाकत्व में फिर एक बार ब्रह्म की अनेक भक्तों को प्राप्ति और
िरह-साधना की आवश्यकता का निर्देश है। बस, उनका काम
माप्त हो गया। इस इस प्रकार वे नीतिवादिता और सूरदास
े काव्य में सामंजस्य स्थापित करना चाहते हैं, परन्तु शेष रह
ाते हैं संयोग के वे स्थूल प्रसंग—सुरति, सुरतारंभ, सुरतांत के
र्णन—जो उनके आगे अब भी प्रश्न बने रहते हैं।

परन्तु हमें धार्मिक काव्य के सम्बन्ध में अपनी परिभाषा ही
ठीक करनी होगी। धार्मिक काव्य और धर्म-काव्य में भेद है।
संत-काव्य धर्म-काव्य ही अधिक है, तुलसी का मानस और सूर
का सूरसागर धार्मिक काव्य हैं। यह इसलिये कि उनमें कवि-भक्त
का अभिप्रेय धार्मिक सिद्धान्तों का निरूपण नहीं है। वह पाठक
को ऊँची भूमि पर पहुँचाना चाहता है जहाँ विधिविधान गौण
होते हैं या होते ही नहीं। यह भावभूमि है जितना भी उच्च धार्मिक
कवि होगा, वह उतनी ही ऊँची भावभूमि पर पाठक को पहुँचा
सकेगा। इस भावभूमि पर पाठक को पहुँचाने के दो साधन हैं—

(१) या तो वह (कवि) भावात्मक अभिव्यक्ति द्वारा पाठक
को उस उच्च भूमि पर पहुँचा दे जहाँ वह काव्य के आलंबन के
बिलकुल सन्मुख खड़ा हो जाय;

(२) या आलंबन के रूप, गुण और चरित्र का इस भावाकु तन्मयता और सरसता में वर्णन करे कि पाठक उस पर होकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को उसमें भूल जाय।

मीरा और विनयपत्रिका में तुलसी ने पहला और सूरसाग सूर ने दूसरा भाग ग्रहण किया है। उन्होंने विषय से ए तादात्म्य स्थापित कर लिया है। सारी कृष्णलीला में सूर ही भाँति ऊँचे आध्यात्मिक धरातल पर टिक नहीं म परन्तु रास, दान, हिंडोल, फाग गोपियों के विरह जैसे अ पर उनके काव्य में प्रगाढ़ रस मिलेगा जो पाठक को लौ से ऊपर उठाने की क्षमता रखता है। इसके लिये सूर के कई साधन हैं :

(१) कृष्ण का ऐश्वर्य—यद्यपि सूर इससे कुछ भी सा नहीं लेते। भागवत में कृष्ण के चमत्कारिक शौर्य और अ ऐश्वर्य को ही भक्तिभावना के दृढ़ करने का साधन गया है।

(२) कृष्ण का रूपसौन्दर्य—सूर ने कृष्ण के रूपसौन्द रहस्यात्मक ढंग से प्रगट किया है। उस रूप की एक झाँ राधा देख पाती है, किसी भी एक अंग पर उसकी आँख नहीं पाती। जो सखियाँ कृष्ण के रूप को देखने का दावा हैं, वे इस प्रेमभावना के आगे लज्जित हैं। ऐसा रहस्यम है वह जो क्षण-क्षण बदलता रहता है—

> "ऐसी दशा भई री इनकी श्याम रूप में मगन रद
> सूरदास प्रभु अगनित सोभा ना जानौं केहि अंग छए री
>
> "जो जेहि अंग सो तहाँ भुलानी
> सूरश्याम गति काहु न जानी"
> "देखो माई सुन्दरता को सागर"

"देखि सखी हरि स्वरूप अनूप"
"सखी री सुन्दरता को रंग" इत्यादि

यही नहीं उसकी वाणी ऐसी ही रहस्यात्मक है—

सुन्दर बोलत आवत बैन

ना जानौं तेहि समय सखी री सब तन स्रवन की नैन
रोम-रोम में शब्द सुरति की नखसिख ज्यों चख ऐन
एते मान बनी चंचलता सुनी न समुझी सैन
तब तकि जकि ह्वै रही चित्र-सी पल न लगत चित चैन
सुनहु सूर यह साँच कि सम्भ्रम सपन किधौं दिन रैन

कृष्ण तो सदैव सुकुमार ही है, बालक ही है, यह बतलाते हुए भी सूर नहीं अघाते।

(३) उनकी चिरनिर्लिप्तता—सूर के कृष्ण ब्रह्म हों या नहीं, पुष्टिमार्ग के निर्लिप्त इष्टदेव अवश्य हैं। वे सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करते।

(४) उनकी वंशी-ध्वनि का प्रभाव अलौकिक है—

मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी
सुनि ध्वनि सिद्ध समाधि टरी

सुनि थके देव विमान। सुरबधू चित्र समान
ग्रहनक्षत्र तजत न रास।
सुनि आनँद ... चल टरे
चराचर गति ... गीत
झरना ...
... बिसरे
... गही
... धीर

द्रुम बेलि चपल भए। मुनि पल्लव प्रगटि नए
जे विटप चंचल पात। ते निकट को अकुलात
अकुलित जे पुलकित गात। अनुराग नैन चुचात
मुनि चचल पवन थके। सरिता जल चलि न सके

(५) सूर के प्रेम की कल्पना भी रहस्यात्मक है। जैसा
कह चुके हैं राधा कृष्ण को सपूर्ण रूप में देख भी नहीं पातं
मिलन के समय भी उसे मिलने का विश्वास नहीं है—

राधे मिलेहु प्रतीति न आवति

सूर ने जहाँ गोपियों के सामूहिक प्रेम को विश्वव्यापी क्रन्दन
रूप दे दिया है, वहाँ राधा के प्रेम को मौन बना कर उतना
रहस्यात्मक कर दिया है। किसका प्रेम अधिक है, किसका
यह नहीं कहा जा सकता। विप्रलंभ काव्य की दृष्टि से तो
का विरहवर्णन पूर्ण है ही, शुद्ध आध्यात्मिक काव्य की दृष्टि
भी उसका मूल्य कुछ कम नहीं है।

सूर ने संयोग-शृङ्गार में सुरति आदि की उद्भावना इस
की है कि वे एक तो पूर्व परंपरा से परिचालित थे जिसमें
तरह के प्रसंग वर्जित नहीं थे। उदाहरण के लिए, ज
गोवर्धन, विद्यापति के काव्य हैं जो स्वयं शिव-उमा को
चलने वाली एक पुरानी परंपरा से सहारा लेकर और शि
स्थान कृष्ण को देकर आगे बढ़ रहे थे। दूसरे इससे वे
उपास्यदेव के इतने निकट आ जाते हैं जितना निकट अन्य प्र
में वे कभी नहीं आ सकते थे। पुष्टिमार्ग के कृष्ण तो नि
उन्हें तो कोई दोष लगता ही नहीं, वे जो करते हैं भक्त के
के लिए लीलामात्र के रूप में। राधा कृष्ण की रति में भक्त
उनके अधिक निकट आ जाता है। दम्पति के निकुंजवि
ध्यान भी परवर्ती पुष्टिमार्ग और हितहरिवंश के संप्र

लिए वैध था। इष्टदेव से तादात्म्य स्थापित करने का अर्थ यही है कि भक्त उनके अन्यतम संपर्क में आ जाय। ठीक हो या गलत भक्तों ने इस अन्यतम संपर्क स्थापित करने की भावना से ही सुरति, सुरतारम्भ और सुरतांत एवं चुम्बन, आलिङ्गन आदि का वर्णन किया। काव्य, आचारशास्त्र और शील की दृष्टि से ये प्रसंग अवांछित थे, वास्तव में काव्य की दृष्टि से इनका कोई मूल्य नहीं है। नाटककारों और कवियों ने इनकी एकान्त अवहेलना की है। पुराणों में इनका वर्णन अवश्य है, परन्तु वहाँ अलौकिकता प्रदर्शन, चमत्कार या रहस्य की भावना से प्रभावित होकर। जयदेव, विद्यापति और सूर स्पष्टतः इसे काव्य का अंग समझ कर नहीं लिख रहे। इसके द्वारा वे केवल अध्यात्म जगत् की स्थापना कर रहे हैं।

धार्मिक साहित्य के लिए यह आवश्यकता है कि वह धार्मिक सिद्धान्तों को स्पर्श करता हुआ भी केवल प्रचार साहित्य नहीं बन जाय। उसमें भक्त अपनी स्थायी मनोवृत्तियों को भली भाँति परिस्फुट करे या धार्मिक भावना का आलंबन जो चरित्र हो उसमें एवं उससे संबंधित कथा में इस प्रकार की वृत्तियों का चित्रण एवं पोषण हो। सूरदास के काव्य में नन्द-यशोदा, गोपी-गोप, राधा-कृष्ण के हृदयों की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावना को गीतबद्ध कर दिया गया है। वात्सल्य, सख्य, प्रेम और विलास के संबन्धी मनोविकार मनुष्य की प्रकृति से चिरकाल से मिले हुए हैं, और कदाचित् अंत तक मिले रहेंगे। प्रेमपात्र की चेष्टाओं में आनन्द, उसके अमङ्गल की आशंका से भय, उसके वियोग में दुःख और पुनर्मिलन की आशा—में सब बातें साहित्यशास्त्र के समस्त संचारियों के साथ सूर के काव्य में प्रगट हुई हैं। प्रेमोल्लास और विरहचीत्कार का इतना बड़ा संग्रह और कहीं भी सुलभ नहीं है। अपने साहित्य के कारण

हो सूरकाव्य आध्यात्मिक साधना का विषय हो सका है। उस एक-एक पद आत्मजिज्ञासुओं के लिए साक्षात्कार का साधन है जो काव्य का रस है, वही भक्ति का रस भी हो गया है।[२] वल्लभाचार्य के मार्ग की विशेषता है कि उन्होंने पूर्णपुरुषोत्त में सच्चिदानन्द के साथ रसगुण की भी कल्पना की है। तैत्तिरि उपनिषद में रस को भी भगवान का गुण माना गया है। म प्रभु ने इस संदर्भ को लेकर धर्म और साहित्य के जगत् में क्रांति ही उत्पन्न कर दी। सच्चिदानन्द रसमय पूर्णब्रह्म के भक्त में रस का ही तो संबंध हो सकता है। इसीलिए रसास्वा को भगवान की प्राप्ति में पहला स्थान दिया गया। इसीसे कृ काव्य में साहित्यशास्त्र की रससंबन्धी मान्यताओं से पू लाभ उठाया गया है जिससे वह सर्वोच्च काव्य की श्रेणी तक पहुँचा है।

परन्तु स्वयम् पुष्टिमार्ग की धार्मिक मान्यताओं ने भी उ धार्मिक साहित्य बनाने में सहायता दी है। सूर के कार कारण पुष्टिमार्ग की धार्मिक मान्यताओं ने सार्वभौमिक महत्त्व कर लिया है। वे मान्यताएँ क्या हैं ?

(१) कृष्ण स्वयं भोगी और भुक्ता हैं। वे अपनी लील द्वारा अपना ही आस्वादन करते हैं। फिर भी वे निर्लिप्त हैं, स्वतन्त्र हैं। इस भावना ने सूर के कृष्ण को अत्यन्त धरातल पर पहुँचा दिया है। इसी से लीलाभाव की प्रतिष्ठा सकी है। गोपियों के एक बड़े समूह के बीच में रह कर प्रेम-प्रसंग चलाते हुए भी शुद्धाद्वैत के ये कृष्ण उनमें बँध जाते। इससे उनके कार्यों में एक प्रकार की महानता जाती है।

(२) पुष्टिमार्ग के कृष्ण आनन्दमय हैं। सूर ने कृष्ण — में चित्रित किया है। केवल कुछ एक पदों में ही

विषाद का चित्रण है जो कथाप्रसंग के कारण आवश्यक हो गया।

(३) कृष्ण के प्रति आत्मसमर्पण ही सर्वोच्च भाव है। इसी से सूर के काव्य में नंद-यशोदा, गोपी-गोप सभी प्रेमपूर्ण आत्मसमर्पण कर देते हैं। कृष्ण के व्यक्तित्व में वे इतने डूब जाते हैं कि उनका स्वयम् अपना व्यक्तित्व जरा भी नहीं रह जाता। गोपियाँ तो इस आत्मसमर्पण का ज्वलंत उदाहरण हैं ही। चीर-लीला, दानलीला, रासलीला—सभी में उनका यही रूप सामने आता है।

(४) इस आत्मसमर्पण के मूल में भगवान की दृढ़ अनुकम्पा के लिए दृढ़ विश्वास रहता है। इस विश्वास से ही प्रेम उत्पन्न होता है और उसके फलस्वरूप भक्त भगवान की सेवा में लग जाता है। इस सेवा का रूप वही है जो वल्लभाचार्य ने निश्चित किया था। इसमें बालकृष्ण इष्टदेव हैं और उनके गोपाल रूप की ही सेवा का आयोजन है। इस सेवा के आठ अंग हैं—मङ्गला, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या-आरती, शयन। कथा-प्रसंग में जहाँ सूरदास को अवसर मिला है, वहाँ उन्होंने इन-इन सेवाओं के विषय में भी पद रख दिए हैं जिनका निर्माण कदाचित् स्फुटरूप में हुआ होगा।

वल्लभसंप्रदाय में दो प्रकार की सेवाएँ हैं—नित्य और नैमित्तिक। नित्य सेवाएँ कृष्ण की दिनचर्या से सम्बन्ध रखती हैं। नैमित्तिक सेवाएँ उत्सवों और विशेष दिनों से संबन्ध रखती हैं। नित्य सेवाओं में मंगला और शयन के सम्बन्ध के पद सूर में नहीं मिलते। कदाचित् "जगायबे को पद" और "कलेऊ के पद" मंगला समय में ही गाये जाते हों। "नित्य कीर्तन-पदों"

होता है, फिर यमुना जी विनती के पद, जगाने और कलेऊ के पद गाए जाते हैं। इसके उपरांत मंगला आरती होती है। अब मङ्गला समय में खंडिता के पद, [illegible] के पद (चीरहरण), हिलग के पद (नयन और मन के प्रति उक्तियाँ) और दधि-मथन के पद गाये जाते हैं। यह अवश्य वल्लभाचार्य के बाद का विकास है।

शृंगार में रूप-वर्णन और फूलपद हैं। आजकल पनघट-प्रसंग भी चलता है। यह भी बाद का जोड़ होगा। ग्वाल में खेलकूद, गोदोहन, माखनचोरी, भोजन, पालने के पद और बीरी के पद, छाक और गोचारण के पद रहते हैं। सूर के समय में शृंगार-सेवा इतनी विकसित नहीं होगी। उसके पूर्वरूप में गोचारण के पद ही होंगे। राजभोग में इस समय रूपवर्णन के पद, कुब्जा के पद, पाट के पद, बहुनायक पद, मान, पांडेलीला हैं। पूर्व में केवल छाक, गोचारण और खेलकूद के पद ही रहे होंगे। इनमें से पांडेलीला केवल सूर में ही मिलती है। बहुनायकत्व और मान के पद भी सूर के ही अधिक हैं।

उत्थापन के समय गाये जाने वाले पद अनेक प्रसंगों से लिए हुए हैं—गोचारण, रूपवर्णन, नयन के प्रति, गाय का बुलाना, वन से लौटना। इनमें पहले अंतिम ही रहे होंगे अर्थात् राजभोग की आरती के बाद कृष्ण आराम-क्रीडा आदि करते होंगे।

सन्ध्या-आरती में रूपवर्णन, खरिक में गायदुहना, चन्द्र-प्रस्ताव और ब्यालू के पद हैं। पहले "आवनी के पद" ही रहे होंगे।

शयन के समय के पद भी अनेक प्रसंगों से इकट्ठे किये गये हैं। उनके विषय अभिसार, मुरली के प्रति, मन के प्रति, [illegible] आदि हैं। इन पदों में सूरदास

के पद बहुत थोड़े हैं—वे भी विशेष दिवसों पर ही गये जाते हैं। स्पष्ट है यह बाद का विकास है।

यह स्पष्ट है कि सूर के बहुत कम पद नित्यसेवा के पदों में स्थान पाये हैं। इसका कारण है कि सूर ने सांप्रदायिकता को विशेष प्रश्रय नहीं दिया—केवल "सेवा" के लिए पद उन्होंने नहीं बनाए। हाँ, उनके पदों ने ही सेवा के वर्तमान रूप की प्रतिष्ठा कराई। इसीसे विट्ठलनाथ ने उन्हें "पुष्टिमार्ग का जहाज" कहा है। "मानसागर", "वामन की कथा", "महराने के पांडे की कथा" इसी ओर संकेत करते हैं। बाद में कृष्ण का बालरूप उनके शृङ्गार-रूप के पीछे छिप गया। इससे शृङ्गार के कितने ही पद भिन्न-भिन्न नित्य सेवाओं के साथ जोड़ दिए गए।

नैमित्तिक पदों में वसन्त, होली, हिंडोला और फूलडोल के पद अवश्य ही सम्प्रदाय को नैमित्तिक सेवा से प्रभावित जान पड़ते हैं, परन्तु बहुत सम्भव है कि सूर के ही पदों ने इन सेवाओं को चलाया, नहीं तो इनकी आवश्यकता ही क्या थी ? इनके अतिरिक्त सूरसागर की कथा ने सम्प्रदाय को जन्माष्टमी की बधाई पालना, ढाढ़ी, मासदिवस का चोक, अन्नप्राशन, कनछेदन, करवट आदि के कितने ही हृदयग्राही प्रसंग दिये जिनमें आज सेवा का महान आयोजन होता है। नालछेदन और दसोधी के पद सूर में नहीं हैं। दान, नवविलास, मान, रथयात्रा, सखीभेष, मानमोचन, दीवाली, अन्नकूट, इन्द्रमानभंग, गोचारण, ब्याह—इनमें सूर के पद अधिक महत्वपूर्ण हैं। हमारा तो विचार है कि बाद की सेवाएँ सूर को कथा का आधार लेकर ही पड़ी की गईं। कालांतर में ऐसी कथाएँ भी सेवा में सामग्री देने लगीं जिनका सूरसागर में कोई संकेत भी नहीं है जैसे चन्द्रावली और राधा की जन्मबधाई, राधाजी का पालना और बाललीला।

महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। ये केवल संगिनियाँ हैं। करखा, दशहरा धनतेरस, रूपचतुर्दशी, कानजगाय, हटरी, भाइदूज, देव प्रबोधिनी भी सूर में नहीं हैं। ये साधारण लोक-उत्सवों से संप्रदाय के भीतर आये हैं। गुसाईंजी और उनके पुत्रों (गिरधर गोविंदराय, बालकृष्ण, गोकुलनाथ, रघुनाथ, घनश्याम और हरिराय) एवं बलदाउ की जन्मबधाई, पालना आदि भी संप्रदाय की उपज हैं। मौनसंक्रांति, फूलमंडली, संवत्सर उत्सव, गनगोर, अक्षयतृतीया और रामनवमी का भी यही हाल है। सूर ने राम-कथा गाई है परन्तु संप्रदाय ने कृष्णजन्म के ढंग पर राम की बधाई, पालना और बाललीला की भी विस्तृत आयोजना की है। आचार्य वल्लभ की बधाई, पालना और बाललीला भी नवीन उपज हैं। इसी प्रकार अनेक प्रसंग हैं जैसे अक्षयतृतीया, नृसिंह, नाव के पद, गंगादशमी, चुन्दरी, कृष्ण का शृङ्गार, पटार्य पवित्रा, राखी। इनसे कृष्ण साधारण लोक-जीवन में भली भाँति प्रतिष्ठित हो सके हैं।

आधुनिक समय में वल्लभसंप्रदाय में जो पूजायें (सेवायें) प्रचलित हैं उनका वर्गीकरण इस प्रकार होगा—

१—वल्लभी सेवायें—नित्य सेवाएँ, यद्यपि इनमें शृङ्गार भावना के मिलने के साथ अनेक अन्य विषय भी आ गये हैं—कदाचित् सूर के प्रभाव के कारण ही।

२—सूरदासी सेवायें— नैमित्तिक सेवाओं का विशेष आयोजन सूर की सामग्री के आधार पर ही खड़ा किया गया। ये सेवायें हैं—जन्म और लौकिक संस्कार, असुरवध, पांडे और वामन की कथायें, दान, मानमोचन, राम, हिंडोला, वसंत, होली, बहुनायकत्व, पनघट, चीरहरण, [illegible]

३—सूर की कृष्ण-कथा के ढंग पर श्री रामचंद्र, वल्लभ और उनके पुत्रों की जन्मबधाई, ढाढ़ी और बाललीला को मौलिक प्रतिष्ठा हुई।

४—कुछ सेवायें लौकिक त्योहारों का कृष्ण से संबंध जोड़ कर गढ़ी गईं जैसे दशहरा, धनतेरस, रूपचतुर्दशी, दिवाली, हटरी, भाईदूज, देवप्रबोधिनी, मौनीसंक्रांति, संवत्सर, गनगोर, अक्षयतृतीया, पवित्रा, राखी, गंगा-दशमी, स्नानयात्रा, बसंत, होली।

५—कितनी ही सेवाओं का आविष्कार स्वयम् संप्रदाय की भावुकता ने किया है जैसे रथयात्रा के कलेऊ, मुकुट, टिपारा, सेहरा, घटायें, काँच और फूल के हिंडोले, फूल-मंडली वास्तव में सारी सेवाओं के पीछे वल्लभाचार्य के पीछे सूर का हाथ ही सबसे महत्त्वपूर्ण है—सबसे अधिक भी है। संभव है नैमित्तिक सेवाओं की सूझ भी सूर ही ने की है। दो बातें संभव हैं—

या तो सूर ने जैसे-जैसे पदसमूहों का निर्माण किया। वैसे-से नैमित्तिक कार्यों का विस्तार होता गया।

या पहले सूरसागर तैयार हो गया, फिर उसकी लीलाओं के आधार पर नैमित्तिक सेवाओं का सूत्रपात हुआ।

जिन लीलाओं के सम्बन्ध में सूर के पद नहीं मिलते वे निश्चय ही अष्टछाप के अन्य कवियों की भावुकता और जनता के निकट पहुँचने की भावना के कारण नैमित्तिक सेवा के लिये आविष्कृत की गईं। जनता के सारे तीज-त्योहारों और उत्सवों को कृष्ण से जोड़ दिया गया।

जो हो, हम देखते हैं कि सूरसागर में जहाँ एक ओर कवि धर्म की उच्चतम भावभूमि को स्पर्श करने में सफल हुआ है जिसने

उसके ग्रंथ को व्यापक रूप दिया है, वहाँ दूसरी ओर उसमें अपने
विशेष संप्रदाय (पुष्टिमार्ग) की धार्मिक मान्यताओं पर ही
उसका ढाँचा खड़ा किया है एवं उसी संप्रदाय की पूजापद्धति
उसे सरस बनाया है। इससे उसका ग्रंथ एक विशेष संप्रद
की संपत्ति भी है और व्यापक रूप से वह सभी कृष्ण-भक्तों
लिये भी है। यही नहीं, उसने परवर्ती पुष्टिमार्ग की पूजापद्ध
के विकास में भी महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

९

शुद्धाद्वैत की दार्शनिक मान्यताएँ और सूरसागर

सूरदास वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में दीक्षित थे जिसके निक मतवाद को शुद्धाद्वैत कहा जाता है। इसी से उनकी ता में उक्त मतवाद का प्रभाव होना असंभव नहीं है। नीचे इसी सम्बन्ध में विचार करेंगे।

१—वल्लभाचार्य ने चरमसत्ता को परब्रह्म, पूर्णब्रह्म या पूर्ण-ोत्तम कहा है। यही ब्रह्म कृष्ण के रूप में अवतार लेते हैं। ं और गोपालकृष्ण में कुछ भी अंतर नहीं। इनके गुण -सत्, चित्, आनन्द और रस। वे स्वयं कर्ता हैं, स्वयं भोक्ता लीला के लिए ही वे अवतार लेते हैं। इस अवस्था में वे क जीवों में प्रविष्ठ होकर भोक्ता बन जाते हैं। मूल में वे त्मा, अजर-अमर, निर्गुण, निःस्पृह, अकर्मी और निराकार इन्हीं सिद्धान्तों को सूर कई प्रकार से काव्य का सफल रूप हैं : कृष्ण कहते हैं—

को माता को पिता हमारे
कब जनमत हमको तुम देख्यो हँसी लगत सुनि बात तुम्हारे
कब माखन चोरी करि खायो कब बँधे महतारी
दुहत कौन की गैया चारत बात कहो यह भारी

नजसुख" (लीला के आनन्द) के लिए ही ब्रह्म कृष्ण-राधा दो रूपों में अवतार लेता है—

(१) ब्रजहिं बसे आपुहि बिसरायो
है तनु जीव एक हम दोऊ सुख कारण उपजाये
ब्रह्मरूप द्वितिया नहिं कोई तब मन त्रिया बनाये

(२) तब नागरि मन हरष भई
प्रकृति पुरुष नारि मैं वे पति काहे भूलि गई
को माता को पिता बंधु को यह तो भेंट नई

(३) सकुचि री नाहिन नई सगाई
प्रकृति पुरुष श्रीपति सीतापति अनुक्रम कथा सुनाई
सूर इती रसरीति स्याम सों तैं ब्रज बसि बिसराई

(४) निरखि तीय रूप प्रिय चकित भारी
किधौं वै पुरुष को नारि मैं, नारि वै पुरुष मैं भई तनु सुध बि

भगवान स्वयं कर्त्ता हैं, स्वयं भोक्ता, इसे सूर ने कृष्ण
राधा एवं गोपियों के संबंध में दिखाया है। वह स्वयं
रूप धारण कर अपने में रस लेता है। वह निर्लिप्त है
माखनचोरी और शृङ्गार-लीलाओं द्वारा प्रगट किया गया है

वल्लभाचार्य ने ज्ञान और क्रिया को ब्रह्म के समस्त गुण
सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कहा है परन्तु सूरदास जी को ही स
महत्त्वपूर्ण मानते जान पड़ते हैं जो आनन्द सुख है। महाप्र
तैत्तिरीय उपनिषद् के आधार पर भगवान में रससुख की अवस्थि
बताई है, अतः रसानन्द भगवत्प्राप्ति का साधन बन गया
आठों रसों में शृङ्गार ही सर्वश्रेष्ठ है। साहित्यशास्त्र में इसके
प्रकार हैं—संयोग, विप्रलंभ। इसीसे भक्त भगवान के प्रति जि
माधुर्य सुख का अनुभव करता है, उसमें भी दो भेद हो ज
हैं। भगवान की लीला में भाग लेता हुआ सान्निध्य प्राप्त भ
संयोग के रस का आनन्द लेता है। उनके वियोग में वह विप्रलंभ
भाव को प्राप्त होता हुआ सदैव उन्हीं का ध्यान करता रहता है
यहाँ तक कि उसे कृष्ण के सिवा और कुछ दिखलाई ही नहीं

। यह दूसरी दशा पहली दशा से ऊँची कही गई है। भाचार्य ने "यद्वदुःखं यशोदाय"—वाले श्लोक में इस मान- संयोग-वियोग-जन्य सुख-दुःख की अनुभूति को ही मान- सेवा कहा है। इस प्रकार उन्होंने वात्सल्य, और शृङ्गार से भगवान के संयोग और वियोग मे रस लेने का आदेश ही दिया था। इसी से सूरदास के काव्य में इनका विशद ार है। वास्तव में राधाकृष्ण लीला को छोड़ कर और कुछ ों को छोड़ कर सारा सूरसागर इसी ढाँचे पर खड़ा है। की सारी लीलाएँ वात्सल्य अथवा शृङ्गार के संयोगपक्षों ही सामने रखती हैं। कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरागमन द नद यशोदा और गोपियों का विरह विप्रलंभपक्ष को थत करता है। स्पष्ट है कि सूर ने सारे सूरसागर में भाचार्य की साधना को ही स्वीकार किया है। सूरसागर उनकी साधना है। यह केवल बालकृष्ण और किशोर की लीलाओं का वर्णन मात्र नहीं है जैसा भागवत में है। तो उसी प्रकार की मानसिक साधना है; हृदय, मन, बुद्धि प है जिस प्रकार की साधना और तप की योजना वल्लभा- ने ऊपर संकेत किये गये छंद में की है। अंतर केवल इतना इस छंद में व्यक्तिगत भावना का प्रकाशन हुआ है और ागर मे इस भावना को साधना का रूप दे दिया गया है।

वल्लभाचार्य के कथन में जिस आध्यात्मिक उत्कंठा और ता के दर्शन होते हैं, सूर के काव्य में उससे कम उत्कंठा और ा नहीं हैं वे स्वयं ही नंद, यशोदा, गोपीगोप बन गए हैं। बात का साक्षी चाहिये तो स्वय सूरदास के पद उपस्थित हैं में वस्तुव्यंजना और कथावर्णन के साथ अत्यन्त तीव्र माभिव्यक्ति चलती है। गोपियों की तरह सूर भी सर्वात्मभाव कृष्ण को समर्पण कर देते हैं—वे कृष्ण में ही सब कुछ देखते

हैं। तभी तो चतुर्भुजदास के प्रश्न पर उन्होंने कहा था कि वे गुरु और भगवान को अलग करके नहीं देखते। तुलसी जहाँ ज्ञानवादियों की तरह कहते हैं—

> सियराममय सब जग जानी
> करउँ प्रणाम जोर जुगपानी

यहाँ सूर सच्चे भक्तों की तरह संसार को कृष्ण की में ही अधिष्ठित कर देते हैं। किम्वदन्ती के अनुसार जब कुएँ में कृष्ण के दर्शन हो गए तो उन्होंने यही तो माँगा था मैं इस रूप के सिवा कुछ न देख सकूँ। यह चाहे सच नहीं परन्तु इस दन्तकथा में जो भावना है उसकी पुष्टि तो सूरदास काव्य से होती ही है।

वल्लभाचार्य पूर्ण पुरुषोत्तम या परब्रह्म से नीचे उतर एक अक्षरब्रह्म की भी प्रतिष्ठा करते हैं जिसमें सत् चित् और मात्रा में आनंद के अंश हैं। यही अक्षरब्रह्म वैकुण्ठ, चरण के रूप में ज्ञानी को प्राप्त होता है। वास्तव में अक्षर, काल, क स्वभाव सब परब्रह्म के विभिन्न रूप हैं और उससे अभिन्न हैं ज्ञान का लक्ष्य है मोक्षप्राप्ति, अतः ज्ञानी के लिये अक्षर प्रकृ और पुरुष के रूप में प्रगट होता है। प्रकृति २८ तत्वों "पदार्थों" में होकर जगत् का जन्म देती है। ये तत्व हैं—सत्व रजस, तमस, पुरुष, प्रकृति, महत्, अहंकार, ५ सूक्ष्म इंद्रिय ५ स्थूल इंद्रियाँ, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, मन। ये तत्व सांख्य के तत्वों से भिन्न हैं यद्यपि इनका नाम वही है। ज्ञान के द्वार जो यह जानता है कि प्रत्येक वस्तु ब्रह्म है वह अक्षरब्रह्म को प्राप्त होता है (या अक्षरब्रह्म से सायुज्य प्राप्त करता है)।

सूर के काव्य में यह सब कुछ नहीं है, क्योंकि वे ज्ञानमार्ग पर चल ही नहीं रहे। उन्हें अक्षरब्रह्म से क्या, वे तो पूर्ण पुरुषोत्तम को जानने वाले भक्त हैं।

—वल्लभाचार्य का मत है कि जब ब्रह्म आनंद के लिए
करना चाहता है तो उससे जीवात्माओं की उसी प्रकार सृष्टि
है, जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग। इस प्रकार जीवात्मा
मा का ही अंश है। वह अनंत और "अणु" है। लीला के
ो ब्रह्म ने उसमें आनन्द का तिरोभाव कर दिया है, जिसका
: कि वह बंधन और अविद्या का शिकार है। जीवात्माएँ
कार की हैं। ये प्रकार-भेद वास्तव में महत्त्वशून्य हैं। ब्रह्म
के लिए ही यह विभाजन करता है :

१) प्रवाह—जो संसार में लिप्त हैं,
२) मर्यादा—जो वैदिक कर्मकांड पथ का पालन करती हैं,
३) पुष्टि—जो भगवान से प्रेम का नाता जोड़ती हैं जो स्वयं
गवान की अनुकंपा (पुष्टि) से उनमें अंकुरित हो जाता है।
इनका उल्लेख भी नहीं किया है। उनका ग्रंथ भक्ति-
, सिद्धान्त-ग्रंथ नहीं। अतः उन्हें इसकी आवश्यकता ही
ी। वे स्वयं "पुष्टि" जीव की श्रेणी में आते हैं।

ल्लभाचार्य ने पुष्टि और मर्यादा मार्गों को स्वीकार किया
र्यादामार्ग से चलता हुआ साधक वैदिक आदेशों का
करता है, श्रवणादि से भगवद्भक्ति प्राप्त करता है, अंत में
साधना का ध्यान रखते हुए भक्त को भगवान सायुज्य दे
। पुष्टिमार्ग में पहले भगवान अनुग्रह (पुष्टि) है। पुष्टि-
भक्त प्रेम के कारण श्रवणादि का पालन करता है उनके द्वारा
ो उत्पत्ति हो, इसलिये नहीं। मर्यादामार्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय
वैश्य के लिए है। पुष्टि में वर्णाश्रम का कोई विचार नहीं,
पुष्टिप्राप्त भक्त के लिए भी सेवा "आवश्यक" है। यदि
साध्य या दुसाध्य हो, तो प्रवृत्तिमार्ग, जिसमें केवल आत्म-
ण भाव ही आवश्यक है, सेवा की भी आवश्यकता नहीं
ती।

३—वल्लभ के अनुसार यह संसार सत् है। लीला ही सृष्टि का कारण है। ब्रह्म ही उपादान कारण है। प्रलय के बाद यह जगत् उसी में लय हो जाता है। यह जगत् ही ब्रह्मस्वरूप है। इसकी सृष्टि में ब्रह्म अपना स्वरूप नहीं बदलता। इसे "अवि-परिणाम" कहते हैं। इस जगत् को ब्रह्म का ही आधिभौतिक समझना चाहिये जिसमें चित् और आनन्द का तिरोभाव स्वप्न में जिस संसार की सृष्टि हम करते हैं, वह इससे भि होता है, अतः मिथ्या है। यह संसार ब्रह्म में ही आरंभ, स्थित और प्रलय का प्राप्त होता है। परन्तु आधिभौतिक (संसार—ब्रह्म का सत् स्वरूप) और मिथ्या संसार (जिस कारण अविद्या है) में अतर है। इस अविद्या से ही "मेर-तेर का जन्म है।

तो क्या यह अविद्या सत्य है? हाँ, लीला के लिए ब्रह्म अविद्या का विस्तार करता है। अविद्या ब्रह्म की ही श है। लीला के लिए ब्रह्म जीवात्मा को अविद्या में प्रसित करता है। यह संसार अहंमता और ममता से बना है जो अविद्या के दो रूप हैं। जीवात्मा इस संसार से ऊपर उठ कर ही मोक्ष प्राप्त करती है। अविद्या के संबंध में सूरदास का प्रसिद्ध पद है—

अब नाच्यो बहुत गुपाल

काम-क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल
महामोह को नेपुर बाजत निंदा शब्द रसाल
भरम भये मन भयो पखावज चलत कुसंगत चाल
तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दे ताल
माया को कटि फेंटा बांध्यो लोभ तिलक दियो भाल
कोटिक कला काछि देखराई जलथल सुधि नहिं काल
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करो नन्दलाल

४—वल्लभाचार्य मोक्ष के लिये कर्मयोग, ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग तीनों को स्वीकार करते हैं। कर्ममार्ग में अग्निहोत्र दर्शपूर्णमासा पशुयज्ञ, चातुर्मास्य, सोमयज्ञ (पूर्वकांड) और ज्ञान (उत्तरकांड) निहित हैं। इन यज्ञों को करता हुआ मनुष्य ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर देवत्व का अधिकारी होता हुआ शनैः-शनैः मोक्ष को पहुँचता है। परन्तु यदि उसे "पुष्टि" प्राप्त है तो वह मृत्यु के बाद सीधे मोक्ष प्राप्त करता है। परन्तु यदि उसे ब्रह्मज्ञान न भी हो और वह श्रुति के अनुसार कर्मकांड करता जाय तो आत्मानन्द की प्राप्ति उसे होगी। यदि वह किसी विशेष फलाकांक्षा से कर्मकांड में लगा है तो वह स्वर्गलोक को प्राप्त करेगा। पुण्यशेष होने पर वह फिर आवागमन के चक्र में पड़ जायगा।

ज्ञानी अक्षरब्रह्म में लय हो जायगा परन्तु ब्रह्मज्ञान के साथ यदि वह भक्त भी है तो पूर्णपुरुषोत्तम में लीन होगा। यह स्थिति पहली स्थिति से अच्छी है।

परन्तु इससे भी ऊँची स्थिति है जब स्वयम् परब्रह्म किसी विशेष जीवात्मा पर पुष्टि करता है। उसे वह अपने समान सूक्ष्म दैवी शरीर देकर निरंतर लीला (नित्यलीला) में स्थान देता है। इस लीला में भगवान भक्त की आज्ञा में रहता है, उसके इशारे पर नाचता है और उस भक्त को भजनानन्द या स्वरूपानंद की प्राप्ति होती है। यह अवस्था किसी भी साधना से प्राप्त नहीं होती है। यह केवल पुष्टि द्वारा प्राप्त होती है। सूर इसको समझते हुए ही कहते हैं :

सूर की स्वामिनी नारि ब्रजभामिनी
गोपी पदरजमहिमा विधि भृगुसों कही
बरस सहस्र कियो तप मैं तेऊ न लही

५—शुद्धाद्वैत में माया को स्थान नहीं मिला है। शंकर के अनुसार अद्वैतस्थिति में माया ही भ्रमात्मक अथवा मिथ्या

यो कमरी तुम निन्दति गोरी जो तीनि लोक आडम्ब
कमरी के बल असुर संहारे कमरिहि ते सब भो
जाति पाँति कमरी सब मेटी सूर सबहि यह दे
(स्कं० १०)

सूर कहना चाहते हैं कि वास्तव में ब्रह्म माया के बल पर ही
करता है, यद्यपि वल्लभाचार्य ऐसा नहीं कहते। परन्तु स
इस अविद्या का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

माधव जू मेरी इक गाइ (स्कंध १)
माधव जू नेकु हरको गाइ ,,

वे कवि हैं, अतः उनकी कल्पना ने निराधार माया को ही व्या
का आधार दे दिया है। स्पष्ट है कि सूरदास वल्लभ के सि
की रक्षा करते हुए आगे बढ़ते हैं, परन्तु भक्तिमतवाद
विशेषताओं को नहीं छोड़ते। इसी से उन्होंने दार्शनिक मत
में मानी हुई 'माया' और वल्लभाचार्य की अविद्या को एक
दिया है।

विनयपदों में सूरदास ने माया को बड़ी महत्ता दी है
उसकी व्यापक विनाशकारिणी शक्ति को बार-बार स्मरण कि
है—

हरि तुव माया को न बिगोयौ

सौ जोजन मरजाद सिंधु की पल में राम बिलोयौ
नारद मगन भये माया में ज्ञान बुद्धि बल खोयौ
साठि पुत्र अरु द्वादस कन्या कंठ लगाये सोयौ
संकर का मन हरयौ कामिनी सेज छाँडि भू सोयौ
चारु मोहिनी आइ अँध किदो तब नखसिख ते रोयौ
सौ भैया दुरजोधन राजा पल में गरद समोयौ
सूरदास कंचन अरु काँचहि एकहि धाग पिरोयौ

अंगर डाल देती है। माया स्वयं मिथ्या है। ब्रह्म, जीव
प्रकृति का तात्त्विक भेद भी मिथ्या है। वल्लभाचार्य कहते है
माया यदि मिथ्या है तो सत्स्वरूप ब्रह्म से उसका किस प्र
सम्बन्ध हो सकता है। इसी से उन्होंने माया को स्वीकार
करते हुए ही जगत् की क्रियात्मक सत्ता का रहस्योद्घाटन क
की चेष्टा की। उन्होंने कहा: ब्रह्म है सच्चिदानन्द, जीव ब्रह्म है
परन्तु उसमें साधारणतः ब्रह्म के एक तत्त्व, आनन्द, का लोप
प्रकृति ब्रह्म ही है परन्तु उसमें सत् और आनन्द दो गुणों
लोप हो जाता है। इसी लिए साधारण परिस्थिति में अन्तर है

सूरदास माया की सत्ता को स्वीकार कर लेते हैं—

"अबिगत अगम अपार आदि नाहिं अविनासी
परम पुरुष अवतार माया जिनकी दासी"
"अलख निरंजन निर्विकार अच्युत अविनासी
सेवत जाहि महेश शेष सुर माया दासी"

दूसरे स्थान पर वे माया की विशद विवेचना करते हु
कहते हैं—

"× × सो हरि माया जा वश माँही"
माया को त्रिगुणात्मक जानो। सत रज तम ताको गुण मानो
तिन प्रथमै महतत्त्व उपजायो। तातें अहंकार प्रगटायो
(स्कं० ३, कपिल-देवहूति-प्रसंग)

सृष्टि के प्रलय का वर्णन करते हुए सूर कहते हैं—
शत सम्वत् भये ब्रह्मा मरै। महाप्रलय नित प्रभुजू करै
माया माहिं नित्य लै पावै। माया हरिपद माँहि समावै
हरि को रूप कह्यो नहिं जाइ। अलख अखण्ड सदा इक भाइ
बहुरि जब हरि की इच्छा होय। देखे माया के दिसि जोय
माया सब तबही उपजावै। ब्रह्मा सों पुनि सृष्टि उपावै
(स्कं० १२)

स्पष्ट है कि यहाँ सूरदास वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों से दूर जा रहे हैं, उन्होंने माया को एक व्यक्तित्व प्रदान कर दिया जो यद्यपि ब्रह्म से भिन्न नहीं, उसी पर आश्रित है, क्योंकि माया ब्रह्म का ही अंश है, उससे ही निकलती है, उसमें ही लय हो जाती है, परन्तु है सत्य, मिथ्या नहीं, छलावा नहीं। माया द्वारा ही कारण कार्य में बदलता भासता है। वास्तव में जनसमुदाय में मायावाद की इतनी प्रधानता थी कि कोई भी कवि-भक्त उससे अछूता नहीं रह सका है। दूसरे, भक्तिवाद में माया का अस्तित्व स्वीकार ही करना पड़ता है, क्योंकि भक्ति तो माया का ही बाध है।

वल्लभाचार्य ने अविद्या का अस्तित्व स्वीकार किया है जिसके दो अंग हैं—अहंमता और ममता। इनके कारण ही "संसार" (दुःख-सुख) का अस्तित्व है। इस अविद्या का आवरण ही आधिभौतिक ब्रह्म (संसार) के सत्य रूप को छिपा देता है। इसीसे महाप्रभु कहते हैं—

निराकारमेव ब्रह्म माया जवनिकाच्छन्नम्
अभिव्यक्त हेतो साकारत्वमपि मायाय गमनकृतत्वात्र स्वाभाविकत्वम्।
(अणुभाष्य)

सूरदास ने "सूरदास की सबै अविद्या दूर करो नंदलाल"—कह कर इस मतवाद को स्वीकार किया है। परन्तु जहाँ हम इस अविद्या का कोई दृढ़ आधार नहीं है, भगवान केवल लीलामात्र के लिये उसको ओढ़ लेते हैं, वहाँ सूर उसे भगवान की शक्ति का दृढ़ आधार देते हैं। कृष्ण कहते हैं—

यह कमरी कमरी करि जानति

जाके जितनी बुद्धि हृदय में सो तितनी अनुमानति
या कमरी के एक रोम पर वारौं चीर नील पाटम्बर

प्रकार समन्वित संयोगविप्रलंभ-प्रधान मानसिक साधना को
त है, वह पुष्ट हो; भागवत के चीरहरण, रास जैसे मधुर स्थलों
ो विकास मिले तथा इसी रूपक श्रेणी की अन्य कथाएँ जोड़ी
यें एवं कृष्ण की मानवता की प्रतिष्ठा हो। साथ ही सूर ने
ष्ण-राधा के प्रेमविकास की भी विशद कल्पना कर ली। इस
कार तीन श्रेणी की कथाओं का गठबन्धन हुआ। यह भी
दों में।

यदि सूर पौराणिक कथा को छोड़ देते तो वे अधिक सफल
ते, परन्तु भागवत की प्रतिष्ठा के कारण ऐसा असंभव था।
तः सूरदास ऐसा नहीं कर सके। फलतः उनका काव्य न लीला-
ाव्य रहा, न चरित्र-काव्य न रूपक-काव्य। वह एक साथ सब
ह हो नहीं सकता था। कथा की पौराणिकता उसे लीलाकाव्य
ने से रोकती है क्योंकि उसमें अवतार धारण करने का विशेष
द्देश्य आ जाता है। धार्मिकता और रूपकों की सृष्टि चरित्र
विकास में बाधक है। अनेक ऐसी कथाओं का समावेश जो
पक नहीं हैं सूरसागर को रूपक-काव्य नहीं बनने देता। संक्षेप
ं, हम सूरसागर का विश्लेषण इस प्रकार कर सकते हैं :

राधाकृष्ण की कथा—प्रेम-प्रधान चरित्र-काव्य या खंड-काव्य

गोपियों और कृष्ण की कथा—रूपक-काव्य (दानलीला) चीरहरण, रास और खंडिता-प्रसंग में यह रूपक स्पष्ट है।

पौराणिक कथा—असुरवध, कालियदमन जैसी कथाएँ जिनसे कृष्ण के अलौकिक ऐश्वर्य की पुष्टि होती है।

लीलाकाव्य—वात्सल्य-प्रधान अंश एवं कृष्ण के दृष्टिकोण से रास, चीरहरण आदि।

शुद्धाद्वैती काव्य—सारी कथा में, विशेषकर नंदयश
गोपीकृष्ण (वात्सल्य) और गोपि
कृष्ण (शृङ्गार) के प्रसंग में;

परन्तु फिर भी सूर ने प्रयत्न किया है कि वे प्रत्येक
को लौकिक धरातल से उठा कर आध्यात्मिक धरातल पर प
दें और ये वल्लभाचार्य द्वारा स्पष्ट किए अर्थों से खूब परि
जान पड़ते हैं—

मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी
सुनि ध्वनि सिद्ध समाधि टरी

वल्लभाचार्य ने मुरली को "नामलीलारूप" (वेणुगीत
सुबोधिनी) कहा है उसी स्थान पर वे कहते हैं—सा हि सर्व
भगवदीयत्वं सम्पादयति आनन्द एव सा प्रकटा द्रवीभूता। ब्रह
नन्दादप्यधिका। आनन्दसारभूता रास और वृन्दावन।के सम्ब
में महाप्रभु के सिद्धान्तों को सूरदास ने काव्य का सुन्दर र
दे दिया है—

रास रस रीति नहिं बरनि आवै
कहाँ वैसी बुद्धि कहाँ वह मन लहौं
कहाँ इह चित्त जिय भ्रम भुलावै
जो कहौं कौन माने निगम अगम जो
कृपा बिनु नहिं या रसहिं पावै
भाव सों भजे, बिनु भाव में यह नहीं
भाव ही माँह याको बसावै

(रास)

नित्यधाम वृन्दावन श्याम। नित्यरूप राधा ब्रजबाम

ब्रह्मरूप एई करतार । करनहार त्रिभुवन संसार
नित्यकुञ्ज सुख नित्यहिंडोर । नित्यहिं त्रिविध समीर झकोर

(वृन्दावन)

काव्य की दृष्टि से सूरदास ने वात्सल्य और शृङ्गार कथाओं साहित्यशास्त्र का सहारा लेकर नई सृष्टियाँ की हैं जैसे नेत्रों प्रति पद, मुरली के प्रति उपालंभ, दृष्टकूट, संचारी भावों साथ रसपुष्टि की चेष्टा, भ्रमरगीत, गोपिका-विरह-गीत। हाँ भावना की गहराई और तीव्रता के कारण कवि एक साथ काव्य और अध्यात्म को छूता है। परन्तु हमें यह भी समझ ना चाहिये कि *सूरदास का ध्येय आध्यात्मिक साधन ही* धिक है काव्यरचना गौण है। इसी से काव्य की दृष्टि से नेक दोष मिलेंगे। जैसे—

(१) स्थूल संयोग (रति, सुरतांत आदि) के चित्रण

(२) बालकृष्ण में शृङ्गार का सम्मिश्रण।

र का दृष्टिकोण तो था—

वे हरि सकल ठौर के बासी
जाको जैसो रूप मन रुचै अपबस करि लीजै

और

काम क्रोध में नेह सुहृदयता काहू विधि करै कोई
धरै ध्यान हरि को जे दृढ़ करि सूर सो हरि सो होई

इसी से गोपियाँ बालकृष्ण को शृङ्गार भाव से देखती हैं। वात्सल्यभाव : यशोदा उनकी बातें समझ नहीं पातीं—

"मेरो हरि कहँ दसहि बरस को तुम्हरी यौवन मद उदमानी"
"ऐसी बातें कहति मनो हरि बरस तीस को"
"तुम तरुणी हरि तरुण नाहिं मन अपने गुनि लेहु"

इस द्विधा को लेकर सूर ने अनेक सुन्दर कथनोपकथन क सृजन किया है। कृष्ण के रहस्य को ठीक-ठीक तो सख्यभाव के उपासक ही जानते हैं जो दोनों की परिस्थितियों को समझ सकते हैं। सारे सूरसागर के पीछे सूर की यही अनन्यभाव की सख्य भावना है।

(३) राजभोग संबंधी पदों में भोजन पदार्थों की अनर्थक सूची,

(४) विषय और भाव की अनेक बार पुनरुक्ति।

१०

सूरदास का भक्ति-काव्य

सूरदास के काव्य के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं भक्तिपक्ष और काव्य-पक्ष। जहाँ केवल भक्तिभावना ग्रहण करने की बात है, अव्यभिचारिणी भक्ति है, वहाँ काव्य किस कोटि का है, यह प्रश्न ही नहीं उठता, परन्तु उच्च कोटि का काव्य निश्चय ही भक्तिभावना को अधिक ऊँची भूमि पर प्रतिष्ठित करने में सहायक होगा। भक्तों के लिए तो सूर का प्रत्येक पद भगवत्साक्षात्कार में सहायक हो सकता है। परन्तु यहाँ हमें सूर के काव्य को भक्ति सम्बन्धी आदर्शों पर आँकना है। स्फुट पदों की आलोचना करना हमारा उद्देश्य नहीं है।

सूर की भक्ति के आलंबन कृष्ण हैं, स्वयं सूर भक्ति के आश्रय हैं, कृष्ण के रूप-गुण, लीलाएँ उद्दीपन विभाव हैं।

सूर के *इस आलंबन का रूप क्या है? सूरदास के* कृष्ण अविगत हैं, मन-वाणी को अगम-अगोचर हैं। वास्तव में वे उसी तरह परब्रह्म हैं जिस तरह तुलसी के राम। जहाँ राम परब्रह्म भी हैं और परब्रह्म के अवतार दाशरथि राम भी हैं, वहाँ सूर और भी आगे बढ़ कर कृष्ण को परब्रह्म से उतर कर कुछ भी मानने को तैयार नहीं हैं। उनके कृष्ण गोपियों से स्वयं कहते हैं—

को माता को पिता हमारे

कब जनमत हमको तुम देख्यो हँसी लगत सुनि बात तुम्हारे

कब माखन चोरी करि खायो कब बाँधे महतारी
दुहत कौन की गैया चारत बात कही यह भारी

परन्तु सूर जानते हैं कि इस निर्गुण, अनादि, अनन्त पर कृष्ण से भक्ति का संबंध नहीं जोड़ा जा सकता वे गोपियों मुँह से कहलाते हैं—

कान्ह कहाँ की बात चलावत
स्वर्ग पताल एक करि राखो सुननि को कहि कहा बतावत !

गोपियों की तरह सूरदास भी परब्रह्म कृष्ण का अनुमोदन स्वीकार कर लेते हैं और अपने काव्य का आरम्भ इसी स्तोत्र से करते हैं—

अविगत-गति कछु कहत न आवै
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै
परम स्वाद सब ही सु निरन्तर अमित तोष उपजावै
मन बानी को अगम अगोचर सो जानै जो पावै
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति बिनु निरालंब कित धावै
सब विधि अगम विचारहिं तातैं सूर सगुन पद गावै

अतः सूरदास परब्रह्म कृष्ण को पहचानते हुए भी उनके सगुण रूप के रहस्यात्मक स्वरूप की कल्पना से ही परिचालित हैं।

यह भगवान भक्त के हेतु अवतार धारण करते हैं। यही लीला का महत्व है, यही उसका रहस्य है—

भक्तहेतु अवतार धर्यो
धर्म कर्म के बस मैं नाहीं योग याग मन मैं न कर्यो
दीन गुहारि सुनी श्रवणनि भरि गर्व वचन सुनि हृदय जर्यो
भाव अधीन रहो सबही के और न काहू नेक डर्यो
ब्रह्मा कीट आदि लौं व्यापक सबको सुख दै दुखहि हर्यो
सूर श्याम तब कही प्रगट ही जहाँ भाव तहँ ते न टर्यो

इसी लिए भक्त और भगवान का प्रेम और भाव का नाता है जिसे दोनों को अपनी अपनी ओर से निभाना है। भक्त अनन्य भाव से भगवान को प्रेम करता है—

स्याम बलराम को सदा गाऊँ

स्याम बलराम बिनु दूसरे देव को स्वप्न हूँ माहिं नहिं हृदय ल्याऊँ
यहै जप यहै तप यहै मम नेम व्रत यहै मम प्रेम फल यहै ध्याऊँ
यहै मम ध्यान, यहै ज्ञान, सुमिरन यहै, सूर प्रभु देहु हौं यहै पाऊँ

इस प्रेम का रूप है आत्मसमर्पण और शरणागति भाव—

जौ हम भले बुरे तो तेरे
तुम्हैं हमारी लाज बड़ाई बिनती सुनि प्रभु मेरे
सब तजि तुम सरनागत आयौ, दृढ़ करि चरन गहे रे

या—

मेरो तौ गतिमति तुम अनतहिं दुख पाऊँ
हौं कहाय तेरो अब कौन को कहाऊँ !
कामधेनु छाँड़ि कहा अजा लै दुहाऊँ !
हय गयद उतरि कहा गर्दभ चढ़ि धाऊँ !

इसी प्रकार —

तुम तजि और कौन पै जाऊँ ?
काकैं द्वार जाइ सिर नाऊँ, परहथ कहाँ बिकाऊँ
ऐसो को दाता है समरथ जाके दिये अघाउँ
अन्तकाल तुम्हरैं सुमिरन गति अनत कहूँ नहिं पाउँ
रंक सुदामा कियौ अजाची, दियौ अभय पद ठाउँ
कामधेनु, चिन्तामनि, दीन्हीं कल्पवृक्ष तर छाउँ
भव समुद्र अति देखि भयानक मन मैं अधिक डराउँ
कीजै कृपा सुमरि अपनौ प्रन, सूरदास बलि जाउँ

[illegible] के योग से ऐसा होने पर ही सब कुछ नहीं [illegible] को कृपा भी तो चाहिए। सच तो यह है कि [illegible] के बिना भक्ति अंकुरित हो नहीं हो सकती। भक्त को [illegible] गुणाचरण सभी काम कर सकते हैं जब भगवान [illegible] मिले, नहीं तो यह उनमें सफल हो नहीं हो सकता। [illegible] में इस भगवान के अनुग्रह को विशेष स्थान मिला है, [illegible] भक्ति संप्रदाय में भगवान की भक्तवत्सलता और [illegible] अनुकंपा पर विश्राम किया गया है। पुष्टिमार्ग में इस [illegible] ग्रह को "पुष्टि" कहा गया है जिससे भक्तों का पोषण होता है। भगवान के अनुग्रह के कारण ही भक्त की भावना का उत्तरोत्तर विकास होता जाता है। सूरदास कहते हैं—

प्रभु को देखौ एक सुभाइ
अति गंभीर उदार उदधि हरि, जान सिरोमनि राइ
तिनका सौं अपने जन कौ गुन मानत मेरु समान
सकुचि गनत अपराध समुद्रहिं बूँद-तुल्य भगवान
बदन प्रसन्न-कमल सन्मुख ह्वै देखत हौं हरि जैसें
बिमुख भये अकृपा न निमिष हूँ फिरि चितयौं तौ तैसें
भक्त-विरह-कातर करुनामय डोलत पाछें लागे
सूरदास ऐसे स्वामी कौ देहिं पीठि सो अभागे

सूरदास ने अपने विनयपदों में बारबार भगवान की अनुकंपा और भक्तवत्सलता का गुणगान किया है। इस अनुकंपा में विश्वास के बिना भक्ति एक पद भी आगे नहीं बढ़ सकती।

परन्तु साधना के अंत में भक्त क्या चाहता है—क्या मुक्ति? ऐसा नहीं है। भक्त तो निरंतर भक्ति की ही याचना करता है। सूर[illegible] हैं—

अपनी भक्ति देहु भगवान
[illegible] जौ दिन कबहुँ नाहिनै रुचि आन

गोपियाँ उद्धव से तर्क-वितर्क न कर कहती हैं—

नाहिन रह्यो मन में ठौर
नंदनंदन अछत कैसे आनिए उर और
चलत, चितवत, दिवस जागत, सपन सोवत राति
हृदय तें वह स्याम मूरति छन न इत-उत जाति
कहत कथा अनेक ऊधौ लोकलाभ दिखाय
कहा करौं तन प्रेम-पूरन घट न सिंधु समाय।
स्यामगात सरोज आनन ललित अति मृदु हास
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास

और—

वे अति ललित मनोहर आनन कैसे मनहिं बिसारौं
योग युक्ति औ मुक्ति विविधि विधि वा मुरली पर वारौं

इस भक्ति के साधन क्या हैं—

(क) नामकीर्तन

भागवत में कहा है—"कलौ केशव कीर्तनात"

सूरदास भी कहते हैं—

तुम्हरो नाम तजि प्रभु जगदीश्वर सुतौ कहौ मेरे और कहा बल
बुधि-विवेक-अनुमान आपनें सोधि कहौ सब सुकृतनि कौ फल
वेद पुरान स्मृति सन्तन को यह अधार मीन कौं ज्यों जल
अष्टसिद्धि, नवनिधि, सुरसंपति, तुम बिनु तसकन कछु न कछु तल
अजामील, गनिका, धु व्याध, नृग जासौं जगधि तरे ऐसेउ खल
सोइ प्रसाद सूरहिं अब दीजै नहीं बहुत तो अन्त एक पल

अथवा

जो तू राम-नाम धन धरतो
अब को जनम, आगिलो तेरो, दोऊ जनम सुधरतो
जम को त्रास सबै मिट जातो भक्त नाम तेरो परतो

तंदुल-धिरत समर्पि स्याम कौ सन्त परोसौ करतौ
होतौ नफा साधु की सङ्गति मूल गाँठि नहिं टरतौ
सूरदास वैकुण्ठ पैठ में कोउ न फैंट पकरतौ

(ख) गुरुभक्ति

पुष्टिमार्ग में गुरु और कृष्ण का एक ही स्थान है
ही जीव का ब्रह्म-संबंध कराता है। गुरु को कृष्ण मान क
उसे आत्मसमर्पण कर देता है। सूर के प्रसंग से यह बा
हो जाती है। सूर का अंत समय आ पहुँचा था। उस
चतुर्भुजदास ने कहा—"सूरदास तुमने भगवत्यश का वर्ण
किया, परन्तु आचार्य महाप्रभू का जस वर्णन नहीं कि
सूरदास ने कहा—जु मैंने तो सारा ही आचार्य महाप्रभु के
ही गाया है। जो विलग देखता तो विलग करता।" यह
कर उन्होंने यह पद गाया—

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो

श्रीवल्लभ नखचन्द्र-छटा बिनु सब जग माहिं अँधेरो
साधन और नहीं या कलि में जासों होत निबेरो
सूर कहा कहि दुविधि आँधरो बिना मोल को चेरो

(ग) लीलागान

सारा सूरसागर ही कृष्णलीला का गान है।

(घ) नित्य और नैमित्तिक कर्म

इनके संबंध में अन्य स्थान पर लिखा जा चुका है।

(ङ) भगवान के रूप का ध्यान

सूर के काव्य में भगवान के बाल और किशोर रूप के अने
चित्र हैं। उन्होंने उन्हें सैकड़ों परिस्थितियों में देखा है औ
उनका ध्यान किया है—

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत

मणिमय कनक नंद के आँगन मुख प्रतिबिम्ब पकरिबेहि धावत
कबहुँ निरखि हरि आप छाँह को कर सों पकरन को चित चाहत
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ पुनि पुनि तिहिं अवगाहत
कनक भूमि पर कर पग छाया यह उपमा एक राजत
कर कर प्रति पद प्रति मणि बसुधा कमल बैठको साजत
बाल-दशा सुख निरखि यशोदा पुनि पुनि नन्द बुलावत
अचरा तर लै ढाकि सूर के प्रभु को जननी दूध पियावत

(बालकृष्ण)

सखी री नन्दनन्दन देखु

धूरि धूसरि जटा जुटलि हरि किए हर भेषु
नील पाट पुरोइ मणिगण फणिज धोखे जाइ
खुनखुना कर हँसत मोहन नचत डौंरु बजाइ
जलज माल गोपाल पहिरे कहौं कहा बनाइ
मुंडमाला मनोहर गर ऐसि शोभा पाइ
स्वातिसुत माला विराजत श्याम तन यों भाइ
मनो उमग गौरि उर हर लिए कंठ लगाइ
केहरी के नखहि निरखत रही नारि विचारि
बाल शशि मनो भाल तै लै उर धर्‍यो त्रिपुरारि

(कृष्ण-शंकर)

मुख छबि देखि हो नंदघरनि

शरद निशि के अंशु अगणित इंदु आभा हरनि
ललित श्रीगोपाल लोचन लोल आँसू ढरनि
मनहुँ वारिज बिलखि विभ्रम परे परबश परनि
कनक मणिमय मकर कुंडल ज्योति जगमग करनि
मित्रलोचन मनहुँ आये तरल गति दोउ तरनि

कुटिल कुन्तल मधुर मिलि मनो कियो चाहत लरनि
बदन करति अनूप शोभा सकै सूर न वरनि
(दाँवरी से बँधे कृष्ण)

देखुरी नंदनंदन ओर

त्रास ते तनु त्रसित योर हरि तकत आनन तोर
बार बार डरात तोको बरन बदनहि थोर
मुकुर मुख दोउ नैन ढारत छणहि छण छवि छोर
सजल चपल कनीन पलकैं अरुण ऐसे दोर
सरस अंबुज भँवर भीतर भ्रमत है जनु भौंर
लकुट के डर देखि जैसे भये शोणित बोर
उर लगाइ विहाय रिस जिय तजहु प्रकृति कठोर
(वही)

आवत उरग नाथे श्याम

नन्द यशुदा गोप गोपनि कहत हैं बलराम
मोर मुकुट विशाल लोचन श्रवन कुंडल लोल
कटि पिताम्बर भेष नटवर नृतत फन प्रति डोल
× × ×

कन्हैया नितंत फन प्रति ऐसे

मनो गिरिवर पर बादर देखत मोर अनन्दत जैसे
डोलत मुकुट शीश पर कुण्डल मंडित गंड
पीत वसन दामिनि तनु घन पर ता पर सुरकोदंड
(नागदमन)

साँवरो मनमोहन माई

देख सखी बनते व्रज आवत सुन्दर नन्दकुमार कन्हाई
मोरपंख सिर मुकुट विराजत मुख मुरली सुर-सुभग सुहाई
कुंडल लोल कपोलन की छवि मधुरी बोलनि बरणि न जाई

लोचन ललित ललाट भ्रकुटि बिच ताकि तिलक की रेख बनाई
मनो मर्याद उलंघि अधिक बल उमँगि चली अति सुन्दरताई
कुञ्चित केश सुदेश बदन पर मानों मधुप माल घिरि आई
मन्द मन्द मुसुकात मनौ घन दामिनि दुरि दुरि देत दिखाई
शोभित सूर निकट नासा के अनुपम अधरनि की अरुनाई
जनु शुक सुरङ्ग विलोकि बिंबफल चाखन कारन चोंच चलाई
(गोचारण-प्रसङ्ग)

देखि री देखि आनंदकंद

चित्त चातक प्रेम घन लोचन चकोरक चन्द
चलित कुंडल गंड मंडल झलक ललित कपोल
सुधारकर जनु मकर क्रीड़त इन्दु दहदह डोल
सुभग कर आनन समापै मुरलिका एहि माइ
मानो हनै अंभोज भाजन लेत सुधा भराइ
श्याम देह दुकूल द्युति छबि लसत तुलसी माल
तड़ित घन संयोग मानो सेनिका शुकजाल
अलक अविरल चारु हास बिलास भ्रकुटी भङ्ग
सूर हरि की निरखि शोभा भई मनसा पङ्ग
(किशोर कृष्ण)

१ किशोर रूप के प्रत्येक अंग के वर्णन मिलेंगे—

देख री हरि के चञ्चल नैन

खञ्जन मीन मृगज चपलाई, नहिं पटतर एक सैन
राजिवदल, इंदीवर, शतदल, कमल कुशेशय जाति
निशि मुद्रित प्रातहि वै विगसत, ये विगसे दिनराति
अरुन असित सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाय
मनो सरस्वति गङ्ग जमुन मिलि आगम कीन्हों आय
(नैन)

यही नहीं, सूरदास सुरतांत की छवि को भी नहीं छोड़ते—

सोभा सुभग आनन ओर
त्रास से तनु त्रसित तिरछे चिते देत अकोर
निरखि सम्मुख कियो चाहत बदन बिधु की जोर
तुला चित्त लोकेश तौले गरुअ आनन गोर
दरशपति रुचि मुदित मनसिज चपल दृग दृगकोर
कोस क्रीड़त मीन मानों नीर नीरज भोर
श्याममुन्दर नैन युगवर झलक कज्जल कोर
सुधारस सचेत मानों कूप दानव चोर
श्रवण मणि ताटंक मंजुल कुटिल कुंतल छोर
मकर संकट काम वापी अलकि फन्दनि डोर
चिकुर अध नव मोति मंडल तरल लट दृग तोर
जनु विध्वंसित व्याल बालक अमी की झकझोर
श्रम स्वेद सीकर गरड़ मण्डित रूप अम्बुज कोर
उमँगि ईषद यो भ्रम तज्यो पीयूष कुम्भ हिलोर
हसत दशननि चमक विद्यु त लसित कठिन कठोर
मुदित मधु पर बिन्दुगन मकरन्द मध्य न थोर
निरखि सोभा समर लजित इन्दु भयो भ्रम भोर
सूर धन्य सुनव किसोरी धन्य नन्दकिशोर

(च) भक्ति का रूप

आलंबन के सौन्दर्य और गुण से चलकर भक्त का रूप स्थिर होता है। भगवद्विषयक रति के पाँच प्रकार हैं—

शांति, प्रीति, प्रेम, अनुकम्पा, कान्ता, या मधुरा-भगवत्रति, भक्ति के रूप और काव्यरस में अत्यंत निकट का संबंध है जो निम्न तालिका से प्रगट हो जायगा :

भगवत्‌रति	भक्ति का रूप	काव्य रस
शान्ति	शांत	शांत रस

भगवन्रति	भक्ति का रूप	काव्य रस
प्रीति	दास्य	दास्य रस
प्रेम	सख्य	सख्य रस
अनुकंपा	वात्सल्य	वात्सल्य
कान्ता या मधुरा	मधुर	शृङ्गार

काव्य में दास्य रस और सख्य रस की व्यवस्था नहीं है, अतः रसों की सामग्री को शांतरस के अंतर्गत ही रखेंगे। अन्य की सामग्री इन्हीं रसों के भीतर गौण रूप से उपस्थित हो सकती है जैसे शांत रस के भीतर रौद्र, भयानक, वीभत्स सामग्री का समावेश संभव है। दास्य भक्ति में अद्भुत, करुण रसों की सामग्री उपादेय होगी। शृङ्गार में अद्भुत हास्य का मेल हो सकता है, परन्तु मुख्य रूप से भगवन् शांत रस, वात्सल्य और शृङ्गार रस की ही व्यवस्था है।

सूर के ग्रंथ में इन सब प्रकारों के उदाहरण मिलेंगे—

(१) शांतभक्ति में वैराग्य की भावना की प्रधानता है, यह वैराग्य केवल संसार के प्रति हो सकता है। इष्टदेव के तो राग रहेगा ही। अतः इस प्रकार की भक्ति का कोई मूल्य नहीं। सूर की भक्ति शास्त्रीय पद्धति पर नहीं चलती परामक्ति है। रागानुगा भक्ति है। वैधी नहीं। अतः इस का स्वरूप उनमें प्रस्फुट नहीं हुआ है यद्यपि विनय के पद ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो शांत भक्ति के अंतर्गत रखे जा हैं, जैसे—

हरि बिनु मीत नहीं कोउ तेरे
सुनि मन, कहौं पुकारि तोसौं हौं भजि गोपालहिं मेरे
या संसार विषय-विष-सागर रहत सदा सब घेरे
सूरदास बिनु अंतकाल में कोउ न आवत नेरे

(२) दास्यभक्ति—महाप्रभु से मिलने से पहले सूर दास्य

के भक्त ही थे जैसे वार्ता से पता चलता है। दास्यभक्ति में विनय और दैन्य प्रकाशन की प्रधानता है। सूर के विनयपदों के केन्द्र में यही भावनाएँ हैं, जैसे

"हरि हौं सब पतितन कौ नायक"
"प्रभु, मैं सब पतितन कौ टीकौ"

तुलसीदास की तरह उन्होंने भी राम के दरबार में पत्रिका भेजी है—

बिनती केहि बिधि प्रभुहि सुनाउँ
महाराज रघुबीर धीर को समय न कबहूँ पाउँ
याम रहत यामिनी के बीते तिहि औसर उठि धाउँ
सकुच होत सुकुमार नींद से कैसे प्रभुहि जगाउँ
दिनकर किरण उदित ब्रह्मादिक रुद्रादिक इक ठाउँ
अगणित भीर अमर मुनिगन की तिहि तें ठौर न पाउँ
उठत सभा दिन मध्य सियापति देखि भीर फिरि आउँ
न्हात खात सुख करत साहिबी कैसे कर अनुसाउँ
रजनीमुख आवत गुण गावत नारद तुम्बर नाउँ
तुमहीं कहा कृपण हौं रघुपति किहि बिधि दुख समझाउँ
एक उपाय करौं कमलापति कहौ तो कहि समझाउँ
पतित उधारन सूर नाम प्रभु लिखि कागद पहुँचाउँ

वास्तव में, तुलसी को "विनयपत्रिका" का बीज यहीं मिला जान पड़ता है।

(३) सख्यभक्ति—सूरसागर में प्रेम, अनुकंपा और मधुरारति का ही प्राधान्य है। इसी से यह सख्य, वात्सल्य और मधुर भावों का एक बृहद् संग्रह है। सख्य भक्तों का आदर्श गोपों और कृष्ण का संबन्ध है। सूर ने भी कृष्ण से प्रधानतम, यही संबन्ध-स्थापित किया है, इसीसे वे कृष्ण की अतिगोपनीय लीलाओं को भी निःसंकोच भाव से कह जाते हैं। इसी सख्य

भावना के कारण सूर भगवान से हठ भी कर लेते हैं—

(४) अनुकंपा रति (या वात्सल्य भक्ति)—इसके लिये नंद-यशोदा आदर्श हैं। ग्वालिनें भी यही भाव रखती हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य इसी भक्ति को प्रधानता देते थे। इसी से निरोलक्षणम् में उन्होंने कहा है—

> यच्च दुःखं यशोदाय नंदादीनां च गोकुले
> गोपिकानां च यद्दुःखं तद्दुःखं स्याममम क्वचित्।
> गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां ब्रजवासिनाम्
> यत्सुखं सम्भुत्तन्मे भगवान् किं विधास्यति।
> उद्धवा गमने जात उत्सवः सुमहान् यथा
> वृन्दावने गोकुले वा तथा वे मनसि क्वचित्।

नंदयशोदा और गोपीग्वालों के वात्सल्य को संयोग और वियोग की दोनों परिस्थितियों में सविस्तृत अंकित कर सूरदास ने स्वयं आध्यात्मिक सुख-दुःख की साधना की है जिसकी ओर महाप्रभु ने संकेत किया है। इसी लिये सूर का वात्सल्य रस सम्बन्धी काव्य शृङ्गार रस के संयोग और वियोग दशाओं की भाँति संचारियों और व्यभिचारियों के अनेक भेदों से पुष्ट होकर हमारे सामने आता है।

(५) मधुरभक्ति—भगवद्विषयक रति का सर्वोच्च विकास मधुररति में है जो मधुरभक्ति की जननी है। मधुर भाव के उपासक कृष्ण-भक्त राधाकृष्ण और कृष्ण-गोपियों के प्रेम में सम्मिलित होकर उनकी लीलाओं-क्रीड़ाओं में आनंद लेते हैं। युगल दम्पति की प्रत्येक प्रेम-चेष्टा उनके हृदय में एक आनंद हिलोर उठा देती है जिसका सुख अनिर्वचनीय है। भक्त स्वयं गोपी बनना चाहता है। गोपियों की तरह वह भी कृष्ण के प्रेम का इच्छुक है। उसे राधा से ईर्ष्या नहीं। वह राधा को धन्य समझता है जो कृष्ण के इतने निकट है। इसी नाते उसे

गोपियों से भी प्रेम है। राधाकृष्ण के मिलन और वियोग की कहानी सूर की मौलिक कल्पना है। केवल इसी एक नवीन उद्‌भावना के नाते उनका स्थान हिन्दी कवियों में अग्रगण्य होता। राधाकृष्ण के प्रेम सम्बन्ध में सूर अपनी आत्मा का अत्यंत विशद चित्रण कर जाते हैं जिसे कृष्ण के संग में इतना सुख है कि दुःख की लेशमात्र छाया भी उस पर नहीं पड़ती है और कृष्ण के विरह में सुख का केवल यदिंकिचित स्मरण हो आता है। सूर की मधुरभक्ति दो खंडों में प्रगट हुई है :

(क) राधाकृष्ण का प्रेम-प्रसंग,

(ख) गोपियों और कृष्ण का प्रेम-प्रसंग;

इन्हीं प्रसंगों में सूर ने कई अभिनव रूपकों की सृष्टि की है। इसे सूर की कल्पना की उत्कृष्टता ही कहना होगा कि हम इन रूपकों को लीला भी कह सकते हैं और परवर्ती काव्य में उनका प्रयोग इसी रूप में हुआ है। दानलीला, मानलीला, बहुनायकत्व लीला, पनघटलीला—इन सभी में कवि-भक्त भगवान की लीलाओं का वर्णन करता हुआ परमात्मा और जीवात्मा (भक्त) के सम्बन्धों को स्पष्ट करने में लगा है। इसके अतिरिक्त सूर ने भागवत के रास और भ्रमरगीत के प्रसंगों को अत्यन्त विशद रूप से चित्रित कर कृष्ण के संयोग-वियोग की अभिव्यंजना की एक नवीन शैली ही स्थापित कर दी है। परवर्ती कवियों ने इसी शैली में अपनी भक्ति-भावना की अभिव्यंजना की है। रासलीला में भक्त भगवान के साथ योगमाया (मुरली) के द्वारा संबंध स्थापित करता है। भ्रमरगीत में वह विरह की अन्यतम दशा को पहुँच जाता है और गोपियों के भ्रमर-उपालंभ के द्वारा अपने ही विरहाकुल हृदय की बात कहता है। वास्तव में सूरसागर गोपियों और कृष्ण के संयोग-वियोग के रूप में मधुर भक्ति की वह वृहद्

भावना के कारण सूर भगवान से हठ भी कर लेते हैं—

(४) अनुकंपा रति (या वात्सल्य भक्ति)—इसके लिये नं यशोदा आदर्श हैं। ग्वालिनें भी यही भाव रखती हैं। महाप्र वल्लभाचार्य इसी भक्ति को प्रधानता देते थे। इसी से निरो लक्षणम् में उन्होंने कहा है—

> यच्च दुःखं यशोदाय नंदादीनां च गोकुले
> गोपिकानां च यद्दुःखं तद्दुःखं स्याममय क्वचित्।
> गोकुले गोपिकानं च सर्वेषां व्रजवासिनाम्
> यत्सुख सम्भुतन्ये भगवान् किं विधास्यति।
> उद्धवा गमने जात उत्सवः सुमहान् यथा
> वृन्दावने गोकुले वा तथा वे मनसि क्वचित्।

नंदयशोदा और गोपीग्वालों के वात्सल्य को संयोग और वियोग की दोनों परिस्थितियों में सविस्तृत अंकित कर सूरदास ने स्वयं आध्यात्मिक सुख-दुःख की साधना की है जिसकी ओर महाप्रभु ने संकेत किया है। इसी लिये सूर का वात्सल्य रस सम्बन्धी काव्य शृङ्गार रस के संयोग और वियोग दशाओं की भाँति संचारियों और व्यभिचारियों के अनेक भेदों से पुष्ट होकर हमारे सामने आता है।

(५) मधुरभक्ति—भगवद्विषयक रति का सर्वोच्च विकास मधुरारति में है जो मधुरभक्ति की जननी है। मधुर भाव के उपासक कृष्ण-भक्त राधाकृष्ण और कृष्ण-गोपियों के प्रेम में सम्मिलित होकर उनकी लीलाओं-क्रीड़ाओं में आनंद लेते हैं। युगल दम्पति की प्रत्येक प्रेम-चेष्टा उनके हृदय में एक आनंद हिलोर उठा देती है जिसका सुख अनिर्वचनीय है। भक्त स्वयं गोपी बनना चाहता है। गोपियों की तरह वह भी कृष्ण के प्रेम का इच्छुक है। उसे राधा से ईर्ष्या नहीं। वह राधा को धन्य समझता है जो कृष्ण के इतने निकट है। इसी नाते उसे

गोपियों से भी प्रेम है। राधाकृष्ण के मिलन और वियोग की कहानी सूर की मौलिक कल्पना है। केवल इसी एक नवीन उद्भावना के नाते उनका स्थान हिन्दी कवियों में अग्रगण्य होता। राधाकृष्ण के प्रेम सम्बन्ध में सूर अपनी आत्मा का अत्यंत विशद चित्रण कर जाते हैं जिसे कृष्ण के संग में इतना सुख है कि दुःख की लेशमात्र छाया भी उस पर नहीं पड़ती है और कृष्ण के विरह में सुख का केवल यत्किंचित स्मरण हो आता है। सूर की मधुरभक्ति दो खंडों में प्रगट हुई है :

(क) राधाकृष्ण का प्रेम-प्रसंग,

(ख) गोपियों और कृष्ण का प्रेम-प्रसंग;

इन्हीं प्रसंगों में सूर ने कई अभिनव रूपकों की सृष्टि की है। इसे सूर की कल्पना की उत्कृष्टता ही कहना होगा कि हम इन रूपकों को लीला भी कह सकते हैं और परवर्ती काव्य में उनका प्रयोग इसी रूप में हुआ है। दानलीला, मानलीला, बहुनायकत्व लीला, पनघटलीला—इन सभी में कवि-भक्त भगवान की लीलाओं का वर्णन करता हुआ परमात्मा और जीवात्मा (भक्त) के सम्बन्धों को स्पष्ट करने में लगा है। इसके अतिरिक्त सूर ने भागवत के रास और भ्रमरगीत के प्रसंगों को अत्यन्त विशद रूप से चित्रित कर कृष्ण के संयोग-वियोग की अभिव्यंजना की एक नवीन शैली ही स्थापित कर दी है। परवर्ती कवियों ने इसी शैली में अपनी भक्ति-भावना की अभिव्यंजना की है। रासलीला में भक्त भगवान के साथ योगमाया (मुरली) के द्वारा संबंध स्थापित करता है। भ्रमरगीत में वह विरह की अन्यतम दशा को पहुँच जाता है और गोपियों के भ्रमर-उपालंभ के द्वारा अपने ही विरहाकुल हृदय की बात कहता है। वास्तव में सूरसागर गोपियों और कृष्ण के संयोग-वियोग के रूप में मधुर भक्ति की वह बृहद्

साधना है जिसका जोड़ संसार के भक्ति-काव्य में मिल असम्भव है।

वल्लभाचार्य ने वात्सल्यभाव को ही एकमात्र उपादेय मा था और वे बालकृष्ण के उपासक थे, परन्तु पुष्टिमार्ग के कवि ने सख्य और मधुरभाव को भी अपनाया। इनमें भी माधुर्य भा को विशेष रूप से ग्रहण किया गया। सारा कृष्णकाव्य ही इ तथ्य के समर्थन में उपस्थित किया जा सकता है। इस माधु भाव की उपासना ने ही कृष्णभक्ति को रामभक्ति के समकक्ष ए विशिष्ट रूप दिया है। नीचे हम देखेंगे कि इस मधुरभाव : भक्ति की विशेषताएँ क्या हैं :

(१) भक्त भगवान के इतना ही निकट है, जितने निकट पति-पत्नी। अतः यह भगवान पर उसी तरह मुग्ध है जिस तरह पत्नी पति पर मुग्ध होती है। भक्ति की सर्वोच्च दशा में तो वह पर-कीया भाव का अनुभव करने लगता है—

जब ते सुन्दर बदन निहार्यो

ता दिन ते मधुकर मन अटक्यो बहुत करी निकरै न निकार्यो
मात पिता पति बन्धु सजन जन तिनहूँ को कहिबे सिर धार्यो
रही न लोकलाज मुख निरखत दुसह क्रोध फीको करि डार्यो
ह्वै सो होय सो होय करम बस अब जी को सब सोच निवार्यो
दासी सूरदास परमानँद भलो पोच अपनो न विचार्यो

(२) कृष्ण-भक्त मन के संयम के स्थान पर मन को कृष्ण की ओर उन्मुख करता है। यह सच है कि सूर ने विनयपदों में मन के नियमन की चेष्टा की है—

मन तोसों कितो कही समुझाइ
नन्दनँदन के चरणकमल भजि तजि पाखंड चतुराइ

सुख-संपति, दारा-सुत, हय-गय, झूठ सबै समुदाइ
छनभंगुर यह सबै स्याम बिनु अन्त नाहिं संग जाइ

परन्तु इन विनय के पदों को सूर ने पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पहले लिखा था। सूर तो मन को सांसारिकता (विषय-वासना) के निम्न स्तरों से उठाकर सहजरूप से कृष्ण में इस तरह लगा देते हैं कि गोपियों के शब्दों में

नाहिंन रह्यो मन में ठौर
नंदनंदन अछत नाहिंन आनिये उर और

अतएव, मधुर भाव के उपासकों के लिए इंद्रियों के नियमन का प्रश्न ही नहीं उठता। वे इंद्रियों को कृष्ण का परिचय कराते हैं जो उन्हें स्वतः अपनी ओर खेंच लेते हैं। जब भक्त की इंद्रियों का उस रूप-सिंधु, गुणसिंधु, लीलामय, हास-विलासमय कृष्ण से परिचय हो जाता है तो वे लौकिक विषय के आश्रयों की ओर मुड़ कर भी नहीं देखतीं। उनके लिये सारा संसार लोप हो जाता है। जहाँ ऐसा भाव है, वहाँ विधिनिषेध, आचार-विचार, संयम-मर्यादा का स्थान ही कहाँ है? यही रागानुगा भक्ति है। तुलसी की रामभक्ति वैधीभक्ति है। वह विधिनिषेध, आचार-विचार, लोक-परलोक सबको समेट कर चलती है। सूरदास की भक्ति-भावना इसमें कहीं गहरी है। उसे इनमें से किसी से तात्पर्य ही क्या? वह तो कृष्ण के सिवा किसी को जानती ही नहीं, फिर इतर वस्तुओं के लिए वह क्यों सोचे? वास्तव में, कृष्णभक्ति में व्यक्तिगत प्रेम-भावना का सर्वोच्च विकास है। उसने आचार और मर्यादा की उपेक्षा नहीं की, परन्तु उनपर बल भी नहीं दिया। उसने मन को नियंत्रण से मुक्त किया। कृष्ण के रूप-गुण को उसे रिझाने दिया। इससे कृष्ण के व्यक्तित्व और उनकी लीलाओं में नित्य नये आकर्षण ढूँढे। रामभक्ति में श्रद्धा और आदर की भावना बनी

रही, सामाजिक विधिनिषेध मानने का उपदेश दिया गया परन्तु कृष्णभक्ति ने इनमें ऊपर उठ कर इष्टदेव से और भी निकट का संबन्ध जोड़ा। सूरदास जानते हैं कि इंद्रियों के नियमन का मार्ग शुष्क, नीरस और कठिन है, इसके समकक्ष भगवान के रूप-गुण में इंद्रिय-समर्पण का मार्ग सरल और सरस है। और सहज भी है। सारे भ्रमरगीत-प्रसंग में इसी संदेश की प्रतिष्ठा की गई है। गोपियाँ कहती हैं—

उलटी रीति तिहारी ऊधो सुनो सो ऐसी को है
अलप बयस अबला अहीर शठ तिनहिं योग कत सोहै
कच गुथि आँधर काजर कानी नकटी पहरे बेसरि
मुड़ली पटिया पारि सँवारै कोढ़ी लावै केसरि
बहिरी पति सौं बात करै तौ तैसोइ उत्तर पावै
सो गति होय सबै ताकी जो ग्वारिन योग सिखावै

और

हमरे कौन जोग व्रत साधे
मृगत्वच, भस्म, अधारि, जटा को को इतनो अवराधे
जाकी कहुँ थाह नहिं पैए अगम अपार अगाधे
गिरिधर लाल छबीले मुख पर इते बाँध को बाँधे
आसन, पवन, भूति, मृगछाला, ध्याननि को अवराधे
सूरदास मानिक परिहरि कै राख गाँठि को बाँधे

वे तो प्रेम के सीधे मार्ग को जानती हैं—

काहे को रोकत मारग सूधो ?
सुनहु, मधुप ! निर्गुन-कंटक तैं राजपंथ क्यों रूधौ !

उन्हें तो सरल प्रेमोपासना ही रसयुक्त जान पड़ती है। इस से वे ऊधो से कहती हैं—

तेरो बुरो न कोऊ मानै
रस की बात, मधुप नीरस सुन, रसिक होत सो जानै

इसीलिये वे कुब्जा के कृत्य को सराहती हैं—

वस वै कुब्जा भलो कियो
सुनि सुनि समाचार ऊधो यो कछुक सिरात हियो
जाको गुन, गति, नाम रूप हरि हार यो फिरि न दियो
तिन अपनो मन हरत न जान्यो हँसि हँसि लोग जियो
सूर तनिक चन्दन चढ़ाय तन ब्रजपति बस्य कियो
और सकल नागरि नारिन को दासी दाँव लियो

सच तो यह है कि इसी मन को कृष्णोन्मुख करने की साधना ने सूरदास द्वारा गोपियों के मुख से उद्धव को उलाहने दिलाये हैं। उनका न योग से विरोध था, न इंद्रिय-निग्रह से। वास्तव में, वे तो इस भाव के भक्त हैं—

काम क्रोध में नेह सुहृदता काहू बिधि करै कोई
धरै ध्यान हरि को जे दृढ़ करि सूर सो हरि सो होई
भज जेहि भाव जो मिले हरि ताहि लों
भेदभेदा नहीं पुरुष नारी
सूर प्रभु श्याम ब्रजबाम आतुर काम
मिली बनधाम गिरिराजधारी

और भी—

निगम ते अगम हरि कृपा न्यारी
प्रीति बस्य श्याम कि राइ कि रंक कोउ पुरुष कि नारि नाहिं भेद कारी

११

सूर के काव्य की विशेषताएँ

सूरसागर के काव्योपयोगी स्थल हैं :

(१) विनय के पद (स्कंध १)

(२) कृष्ण-जन्म, बालकृष्ण की क्रीड़ाएँ और नंदयशोदा एवं गोपियों का वात्सल्य (स्कंध १०, पूर्वार्द्ध)

(३) राधाकृष्ण का प्रेम-प्रसंग (वही)

(४) गोपियों संबंधी निम्न स्थल—मुरली के प्रति कहे पद, नेत्रों के प्रति कहे पद, राधाकृष्ण के रूप-वर्णन संबंधी पद, भ्रमरगीत, गोपिका-विरह (वही)

(५) कूटपद (वही)

शेप स्कंध और १०वें स्कंध का शेप भाग काव्य की दृष्टि से कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता, भले ही धार्मिक दृष्टि से उसका कितना ही महत्त्व हो। कूटपदों को छोड़ कर शेप को हम शांत, वात्सल्य और शृङ्गार के अंतर्गत रख सकते हैं। विभिन्न शीर्षकों के नीचे हम इन पर विशेष रूप से विचार भी कर चुके हैं। यहाँ केवल सामान्य रूप से सूर के काव्य का विश्लेषण करेंगे।

१—वर्णन

सूर का काव्य गीतात्मक है, अतः उसमें वर्णनों को विशेष स्थान नहीं मिला है। फिर भी वह उससे एकदम अछूता हो नहीं है। दशमस्कंध के सिवा सूर का अधिक काव्य वर्णनात्मक ही कहा जायगा, क्योंकि उसमें सूर विनय की भावना की ऊँचाई

पर नहीं उठाते, न उसमें इस प्रकार तन्मय हो जाते हैं, जिस प्रकार दशमस्कंध पूर्वार्द्ध में। इस सारे वर्णनात्मक काव्य की विशेषता है—

(१) अत्यंत संक्षेप में कथा कहने की प्रवृत्ति,

(२) रस, अलंकार आदि काव्य-गुण-हीनता,

(३) भाषा की सरलता और क्षिप्रता और शैली में कथा-वाचकपन।

परन्तु दशमस्कंध का वर्णनात्मक काव्य इससे भिन्न है उसमें हमें कई प्रकार के वर्णन मिलेंगे :

(१) उत्सवों और लीलाओं के वर्णन

(२) रूप-वर्णन

(३) प्रकृति-वर्णन

इन वर्णनों में चित्रोपमता, अलंकार-विधान और रससृष्टि पर ध्यान दिया गया है। कृष्ण-जन्मोत्सव का अत्यंत सुन्दर वर्णन सूर की वर्णनक्षमता का उदाहरण है—

> ब्रज भयो महर को पूत जब यह बात सुनी
> सुनि आनदे सब लोग गोकुल गनक गुनी
> अति पूरब पूरे पुण्य रूप कुल अटल थुनी
> ग्रहलग्न नक्षत्र बल शोधि कीनी वेदध्वनी
> सुनि धाईं सबै ब्रजनारी सहज शृगार किए
> तनु पहिरे नौतन चीर काजर नैन दिए
> कसि कंचुकि तिलक लिलार शोभित हार हिए
> कर कंकन कंचन थार मंगल साज लिए
> शुभ श्रवणनि तरल तनाइ वेनी शिथिल गुही
> सुर बर्षत सुमन सुदेश मानो मेघपुही
> मुखमंडित रोरी रंग सेंदुर माँग छुही
> ते अपने अपने मेलि निकसी भाँति भली

मनु लाल मनिन की पाँति पिंजर चूरि चली
गुण गावहिं मंगलगीत मिलि दस पाँच अली
मनु भोर भए रवि देखि फूली कमलकली
पिय पहिले पहुँची जाइ अति आनंदभरी
लई भीतर भवन बुलाइ सबै शिशु पाइ परी
एक बदन उघारि निहारि देहि असीस खरी
चिर जियो यशोदानंदन पूरणकाम हरी
धनि धनि दिन धनि रात धनि यह पहर घरी
धन धन्य महर की कूख भाग सुहाग भरी
जिन जायो ऐसो पूत सब सुख फलनि फरी
थाप्यो थिर परिवार मन की सूल हरी
सुन ग्वालिन गाय बहोरि बालक बोलि लिये
गुहि गुंजा घसि बनधातु अंगनि चित्र दये
शिर दधि-माखन के माट गावत गीत नए
कर झाँझ मृदङ्ग बजाइ सब नंदभवन गये
मिलि नाचत करत किलोल छिरकत दूध दही
मानो बरषत भादों मास नदी घृत दूध-दही
आजु नंद के द्वारे भीर
एक आवत एक जात विदा होइ एक ठाड़े मंदिर के तीर
कोउ केसर कोउ तिलक बनावत कोउ पहिरत कंचुकी चीर
एकन कौं दान समर्पित एकन को पहिरावत चीर
एकन को भूषण पाटम्बर एकन को जो देत नग हीर
एकन को पुहुपन की माला एकन को चंदन घिसि नीर

लगभग सारा ही सूरसागर वर्णनात्मक काव्य के अंदर आ जाता यद्यपि अनेक वर्णनों के साथ आत्माभिव्यक्ति और गीतात्मकता मिली हुई है। यह स्पष्ट है कि सूर वर्णनोपयोगी स्थलों को खोजने में बड़े चतुर हैं और वे अत्यंत विशद, सूक्ष्म, सरस और

प्रलंकृत वर्णन करते हैं। वर्णन शुद्ध नहीं रह सके हैं, इसका कारण यह है कि सूर ने उन स्थलों को अत्यन्त निकट से देखा है, उनको भक्तिभावना उनमें मिल गई है। बालकृष्ण की लीला में तो वे स्वयम् उपस्थित ही हैं—

> नंद जू मेरे मन आनंद भयो हौं गोवर्धन ते आयो
> तुमरे पुत्र भयो मैं सुनिकै अति आतुर उठि धायो
> × × ×
> कोटि देहु तौ रुचि नहिं मानों बिन देखे नहि जैहौं
> नंदराय सुनि बिनती मेरी तबहि बिदा भले ह्वै हौं
> दीजै मोहि कृपा करि सोई जोहौं आयो माँगन
> यशुमति सुख अपने पाँइन जब खेलत आवे आँगन
> जब तुम मदनमोहन करि टेरो इहि सुनि के घर जाउँ
> हौं तो तेरो घर को ढाढ़ी सूरदास मेरी नाउ

ये सूरसागर में भी वे सख्य भाव से उपस्थित हैं, अथवा प्रसंग में गोपियों आदि के पक्ष को ग्रहण कर अत्यन्त निकट हो जाते हैं। इस प्रकार वे एक ऐसे काव्य को जन्म देने में सफल हुए हैं जिसे एक ही साथ वर्णनात्मक और आत्मव्यंजनात्मक कहा जा सकता है। अतः हम सूर के वर्णनों को शुद्ध वर्णन न कह भाव-नात्मक वर्णन कहेंगे। इसी निजत्व और नैकट्य के कारण वे एक ही वर्णन को कई बार रखने से भी नहीं चूकते।

रूपवर्णन के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। शुद्ध रूपवर्णन नहीं हैं, कवि की भक्तिभावना के साथ वह और भी सुन्दर हो गया है। रूपवर्णन में सूर या तो कूटों का प्रयोग करते हैं या उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं का, जो साहित्यशास्त्र और कविपरंपरा से ग्रहण की गई हैं। इन्हीं के कारण सूर का रूप-वर्णन अद्वितीय हुआ है। परन्तु सारे सूरसागर में वह एक ही

तरह का है। वही उपमाएँ-उत्प्रेक्षाएँ। सूर के पुष्टिमार्ग में रू
ध्यान का विशेष स्थान था, इसमें सूर कृष्ण और राधा
सौन्दर्य-वर्णन से अघाते नहीं। उन्होंने दम्पति का प्रत्येक अवस
और प्रत्येक परिस्थिति में वर्णन किया है, कहीं स्वतंत्र, कहीं क
में लिपटा हुआ। सूर के काव्य का यह एक अंग ही इतना पुष्ट
कि संसार के साहित्य में उसका जोड़ नहीं।

स्वतंत्र प्रकृति-वर्णन के भी दर्शन नहीं होते। सूरकाव्य
प्रकृति नायक-नायिकाओं के क्रियाकलाप के साथ मिलकर साम
आती है। अन्य हिन्दी कवियों की भाँति सूर में षट्ऋतु या बारह
मासा नहीं है। केवल रूपकों और लीलाओं की अवतारणा
लिये ही प्रकृति का अस्तित्व है—

प्रभात का वर्णन (कृष्ण के जागरण के सम्बन्ध में)
संध्या (गोचारण " ")
निशागम (शयन " ")
वर्षा (राधाकृष्ण प्रथम मिलन और इंद्र-गर्व-हरण के प्रसंगों में)
वसन्त (वसन्तलीला, फाग, फगुआ और हिंडोला-लीलाओं की भूमिका के लिये)
शरद् (रास की भूमिका के लिये)
यमुना (स्नान आदि के प्रसंग में केवल गौण वर्णन व विरहावस्था का रूपक)

स्पष्ट है कि प्रकृति का स्वतंत्र चित्र एक भी नहीं है। इसका
कारण सूर की भक्तिभावना है। भागवत के वर्षा और शरद-
वर्णन से (जिनकी एक लम्बी पौराणिक परंपरा है) सूर ने उस
भी लाभ नहीं उठाना चाहा। जहाँ प्रकृति का कुछ वर्णन है भी,
वहाँ वस्तु-नामावली मात्र उपस्थित करने की परिपाटी को निभाया

गया है, संश्लिष्ट चित्र नहीं मिलेंगे । उद्दीपन रूप में भी प्रकृति-वर्णन है, जैसे गोपिका-विरह में बादल, कालिन्दी, चंद्रोदय आदि के वर्णन :

> बरुवे बदरा बरसन आए (बादल)
> हमारे माई मोरउ बैर परे (मोर)
> देखियत कालिंदी अति कारी (यमुना)
> कोउ माई बरजे या चंदहि (चंद्र)
> हरि परदेश बहुत दिन लाए (वर्षा)
> आजु घनश्याम की उनहारी (बादल)
> ऐसे सुनियत हैं सलन (बादल)
> कोकिल, हरि के बोल सुनाव (कोकिल)

जो हो, सूर का प्रकृति-वर्णन अधिक विशद नहीं है और उसमें नवीनता की मात्रा भी अधिक नहीं है ।

सूरदास केवल प्रसंगवश ही नगर-वर्णन किया, परन्तु वह भी रूपक के रूप में। उनके काव्य के नायक शृङ्गार-रस के देवता भी हैं, अतः वे मथुरा का वर्णन युवती-रूप में करते हैं—

> श्री मथुरा जी ऐसी आजु बनी
>
> देखहु हरि जैसे अति आगम सजति शृंगार घनी
> मानहु कोटि कछी कटि किंकिनि उपवन बसन सुरंग
> मूरख भवन विचित्र देखियत शोभित सुन्दर अंग
> सुनत श्रवण थरियार घोर ध्वनि पायन नूपुर बाजत
> अति संभ्रम अंचल चंचल प्रति धामन ध्वजा विराजत
> ऊँचे अटन पर छत्रन की छवि शीशन मानो फूली
> कनक कलश-कुच प्रगट देखियत आनँद कंचुकि भूली
> विद्रुम फटिक पची परदा छवि जालरंध्र की रेख
> मानहु ... दरशन कारण भूले नैन निमेख

कुछ वीर रस है, परन्तु उसका विशेष परिपाक नहीं हुआ। वास्तव में असुरवध की लीलायें आश्चर्य (अद्भुत रस) का प्रादुर्भाव करती है। सूर ने उनमें मौलिकता रखी है, परन्तु परिपाक की ओर उनका ध्यान नहीं। कथा के विस्तार की पर्वा नहीं की गई है। अद्भुत रस के अंतर्गत कितने ही प्रसंग आते हैं जैसे यशोदा को विराट-रूप-दर्शन, शकटवध, भगवान का अँगूठा चूसने पर प्रलय होने के चिन्ह प्रगट हो जाना। वास्तव में, सूर भागवत की भाँति भगवान के अद्भुत कार्यकलाप को भी ध्यान में रखते हैं। भागवत में निर्गुण ब्रह्मरूप भगवान माता का स्तन पी रहे हैं, यह अद्भुत बात ही है? भागवतकार ऊखल से बँधे कृष्ण पर कहते हैं—"जिसका भीतर-बाहर नहीं है, पूर्व-परचात् नहीं है, इतने पर भी भीतर भी है, और बाहर भी, तथा आदि में भी है और अंत में भी, यहाँ तक कि जो स्वयम् जगत् रूप में भी विराजमान है, जो अतीन्द्रिय और अव्यक्त है—उसी भगवान के मनुष्याकार धारण करने से उसे अपना पुत्र मान कर यशोदा ने प्राकृत बालक की तरह रस्सी से ऊखल में बाँध रखा है।

(दशम स्कं० अध्याय ६ श्लोक १३-१४)"

इससे मधुर भक्तिभाव की पुष्टि ही होती है यद्यपि काव्य के वात्सल्य रस के परिपाक में बाधा पड़ती है। परन्तु हमें यह समझ लेना चाहिये कि काव्य का वात्सल्य रस भक्ति की वात्सल्य रति से भिन्न हो सकता है, जैसा है भी। यहाँ बालक की अलौकिकता और ईश्वरीय प्रतिभा ही भाव के विकास में सहायक है। ऐसा न समझ कर ही सूर [illegible] अद्भुत
रस का मिश्रण करने का दोष [illegible] है।
सूर बार-बार [illegible]
कहकर

(स्फटिक के आँगन में बालक कृष्ण घुटनों के बल चल रहे हैं और उनके हाथ-पैर का प्रतिबिंब पड़ता चलता है) अलंकारों का अधिक प्रयोग राधाकृष्ण के रूप-वर्णन में ही है। उपमा-उत्प्रेक्षाएँ अनेक क्षेत्रों से ली गई हैं :

(१) परंपरा से (देखिये रूपवर्णन के पद)

(२) सामान्य प्राकृतिक व्यापारों से जैसे—

नील स्वेत पट पीत लाल मनि लटकन माल सराई
शनि, गुरु, असुर, देवगुरु मिलि मनो भौम सहित समुदाई

(३) पौराणिक प्रसंगों से, जैसे

हरि कर राजत माखन रोटी
मनौ वराह भूधर सह पृथिवी धरी दसनन की कोटी

अथवा

मथत दधि मथनी टेकि रह्यो
आरि करत मटकी गहि मोहन बासुकि सभु डर्‌यो
मंदर डरत, सिंधु पुनि काँपत, फिरि जनि मथन करै
प्रलय होय जनि गहै मथानी प्रभु मर्याद टरै

परंपरागत उपमाओं को लेकर सूर किस अभिनव ढंग करते हैं, यह बात इन पदों से प्रगट हो जायगी—

(१) ऊधो! अब यह समुझि भई
नंदनँदन के अंग-अंग प्रति उपमा न्याय दई
कुंडल कुटिल भँवर भरि भाँवरि मालति सुरै लई
तजत न गहरु कियो कपटी जब जानी निरस गई
आनन इंदु बरन सम्मुख तजि करखें तें न भई
निरमोही नहिं नेह, कुमुदिनी अंतहि हेम हई
तन घनश्याम सेइ निशिबासर, रटि रसना छिजई
सूर विवेकहीन चातक मुख बूँदौ तौ न सई

कर धनु लै किन चंदहि मारि
तू हरवाय जाय मंदिर चढ़ि ससि सम्मुख दर्पण विस्तारि
याही भाँति बुलाय, मुकुट महि अति बल खंडखंड करि डारि

कल्पना को इतना खींचना ठीक नहीं। इन्हीं अलंकारों में अन्योक्तियाँ भी आती हैं जो उन्होंने हंस, चकई, भृंगी आदि को लेकर कही हैं। परन्तु सूर ने निरलंकारिक भाषा में मानव-स्वभाव (और शिशुस्वभाव) का अत्यंत सुन्दर वर्णन किया है जिससे उनकी प्रतिभा की दूसरी दिशा भी हमारे सामने आती है। शास्त्राग्रही इसे "स्वभावोक्ति" अलंकार के भीतर रख कर छुट्टी पा सकते हैं, परन्तु वास्तव में सूर अलंकार के बाहर भी महाकवि की भूमि पर प्रतिष्ठा पा रहे हैं।

४—ध्वनि-काव्य या व्यंग-काव्य

नेत्रों और मुरली के प्रति कहे पद, भ्रमरगीत आदि सूरदास का काव्य प्रकृति धरातल को छोड़ कर एकदम ऊप आध्यात्मिक धरातल पर उठ गया है। वह श्रेष्ठ ध्वनिकाव्य जहाँ व्यंजना की ही प्रधानता है। वैसे रूपक वाले प्रसङ्ग (दान लीला आदि) भी ध्वन्यात्मक हैं, परन्तु यहाँ हम उनकी बात छोड़ देते हैं।

नेत्रों के प्रति पद

सूर के कृष्ण-राधा शृङ्गार के आलंबन हैं, इस रूप में उनके नेत्रों का वर्णन हुआ ही है और विस्तार-पूर्वक हुआ है सखियाँ (गोपियाँ) दोनों के नेत्रों पर रीझी हैं, यहाँ तक कि नेत्र की सुरतांत छवि की प्रशंसा करते भी नहीं अघातीं। नेत्र से अधिक प्रेम प्रकट करने वाली वस्तु और क्या है? इसीसे उस शृङ्गार काव्य में नेत्रों को महत्त्व अवश्य मिलेगा। परन्तु सू नेत्रों को केवल आलंबन रूप या आश्रय रूप में वर्णन करके ही

(१) कृष्ण के नेत्र—यह गोपियां और राधा को आलंबन रूप हैं। बाललीला में नेत्रों का विशेष वर्णन नहीं है। गोपियों के प्रवेश के साथ नेत्रवर्णन आरम्भ होता है जब नेत्रों की पहली बार "सुलद्दलोचन" कहा जाता है। फिर माखनचोरी के बाद उखल-बंधन-प्रसंग में नेत्रों का विशद वर्णन है—

(१) नील नीरज दृग लसैं मनो ओसकन कृत लोल
(२) ललित श्रीगोपाल लोचन लोल आँसू ढरनि
मनहुँ वारिज बिलसि विभ्रम परे परवश परनि
(३) जलज मंजुल लोल लोचन शरद चितवन दीन
मनहुँ खेलत हैं परस्पर मकरध्वज द्वै मीन
(४) त्रास ते अति चपल गोलक सजल शोभित छोर
मीन मानों बेधि बंशी करत जल झकझोर
(५) देखि जु आँसू गिरत नैन ते शोभित है ढरि जात
मुक्ता मनो सुगल खग खंजन चोंचिपुटी न समात

यहाँ उद्दीपन भाव इष्ट नहीं है। उपास्य की शोभा का सहज वर्णन मात्र है। इसके बाद उद्दीपन भाव से नयनों का वर्णन आरम्भ होता है जब कृष्ण गोचरण को जाते हैं—

(१) कुटिल अलकें मुख चंचल लोचन निरखत अति आनंदन
कमल मध्य मनो है खंग खंजन बँधे आत उड़ फंदन
(२) नैन कमलदल मीन
(३) खंजन मीन कुरंग भृङ्ग वारिज पर अति रुचि पाई
(४) बने विशाल हरि लोचन लोल
चितै-चितै हरि चारु बिलोकनि मानहुँ माँगत है मनमोल

जलक्रीड़ा के प्रसंग में भी इसी तरह अन्य अंगों के साथ नेत्रों का भी वर्णन है, स्वतंत्र पद नहीं है। परन्तु इसी प्रसंग के बाद नेत्रों पर पूरे पद मिलते हैं, जैसे

देखि री हरि के चंचल तारे
कमल मीन को कहाँ देखो छवि खंजनहु न जात अनु
वे देखि निरखि नमित मुरली पर कर मुख नयन एक मद
मनु सरोज बिधु बैर बिरंचि करि करत नाद वाहन भुजग
उपमा एक अनूपम उपजत कुंचित अलक मनो हमारे
बिहरत (सिमुकि जानि रथ ते मृग जनु क्योंकि शशि अंमर हारे

यहीं से नेत्रों का दूसरे प्रकार का प्रयोग शुरू होता है। गोपि
अपने नेत्रों को सम्बोधन करती हैं—

(१) हरि मुख निरखत नैन भुलाने
ये मधुकर रुचि पंकज लोभी ताही ते न उड़ाने
(२) नैना मार्ई भूले अनत न जात
(३) मनोहर है नैनन की भाँति
(४) देखि री हरि के चंचल नैन
(५) लोचन हरत अंबुज-मान
(६) मन तो हरि के हाथ बिकानो
नैननि साँटि करी नैननि मिलि उन्हीं सों रुचि मानी
(७) मन बिगर्‌यो ए नैन बिगारे
(८) आपुस्वारथी की गति नाहीं

इन पदों में अनेक भाव हैं :—

(१) लोचनों को कपटी कहकर उनकी उलहना की जाती है।
(२) उनकी परवशता पर गोपियाँ शोक करती हैं।
(३) उनकी विवशता का वर्णन है।
(४) वे कृष्ण की रूपमाधुरी लूटने में मस्त हैं, हमें दुःख दे

ने कहना नहीं माना। मान ...

(६) नैन स्वार्थी, नौन हराम, भलाई न मानने वाले, हठी, ढीठ, विश्वास के अयोग्य, चवाव डालने वाले, लोभी, घर के चोर, हरि के रूप को चुराने जाकर पकड़े जाने वाले, अलकजाल में बँध जाने वाले पखेरू, बटपारी, चुगलखोर, लंपट आदि आदि है।

(७) नेत्रों को लेकर खग, मृग, गयंद, चकोर, कुरंग, शिशु, नट के परा आदि रूपक खड़े किये गये हैं।

(८) रूप से छके नेत्र की मस्ती का वर्णन है (सुभट भए डोलत ऐ नैन, रोम-रोम ह्वै नैन रहे री, नैन भए बोहित के काग, मेरे नैन चकोर भुलाने, हरि छवि अंग नट के ख्याल, नैननि निरखि अजहुँ न फिरे री, तब ते नैन रहे इकटक ही, नैना नैनन माँझ समाने)।

(६) नेत्रों द्वारा कष्ट की व्यंजना (नैना मारेहु पर मारत)।

(१०) नेत्रों से झगड़ना (नैनन सों झगरौ करिहौं री, मोहू ते वे रीढ़ कहावत)।

(११) समझाती हूँ, अब भी कहना नहीं मानते।

(१२) कभी-कभी श्याम के कहने से बुलाने आते हैं।

(१३) नेत्र आकर झगड़ते हैं।

(१४) नेत्र नाचते हैं।

(१५) नेत्रों से गोपियाँ अपने को धन्य समझती हैं।

इस प्रकार नयनों के प्रति की गई उद्भावनाओं से एक नवीन साहित्य ही खड़ा हो जाता है। इस साहित्य का अर्थ है कृष्ण के रूप-माधुर्य की व्यंजना, प्रेमी की उत्कट प्रेमभावना की व्यंजना (यह दूसरी बात ही अधिक है) और प्रेमी के रूप-दर्शन से एक ही साथ कहीं सुख होना, कभी दुःख होना, क्योंकि प्रेमी का मन अतृप्त रहा है। सूरदास ने इस शैली का सूत्र कहाँ से पाया, यह

न पा सकता। उद्दीपन मात्र से राधाकृष्ण के नेत्रों
ी तो परंपरा साहित्य एवं रीतिशास्त्र में थी। परन्
साहित्य की परंपरा लोकगीतों या कुछ फुटकर श्लोकं
सूर ने इसको मौलिक रूप से खड़ा किया। परवर्ती
क्त-काव्य और रीति-काव्य में सूर को लेकर इस प्रकार के
स्व लोचनों की भर्त्सना की परंपरा ही निश्चित हो
र्तन पदों" में ये और इस प्रकार के पद "हिलग-पद"
ने रखे गये हैं। यह वर्णन संयोग-शृङ्गार के अंतर्गत
को व्यंजना करके रहस्यात्मकता की सृष्टि करता है।
नि" वियोग में जो कहा गया है, उसमें ये हिलग के
णी के हैं।

के मथुरागमन पर सूरदास फिर नेत्रों को सम्मुख
नेत्रों से निरंतर आँसू झरते हैं (१ सखि, इन नैनन
२ नैना सावन भादों जीते), नेत्र दर्शन को तरसते
नेत्रों को उलहने देती हैं कि पहले रसलंपट होकर
अब विरह में रोगी बन गये; चातक और विरह की
रूपकों से नेत्रों की व्याकुलता प्रगट की जाती है;
से नेत्रों को संबोधित किया जाता है और इनकी
कर कृष्ण से आने की प्रार्थना की जाती है।

र नेत्रों का वर्णन चार प्रकार से हुआ है। राधा और
आलंबन के रूप में वर्णित हैं, नेत्रों के प्रति संकेत-
क उपालंभों की सृष्टि की गई है जो प्रेम के रहस्य-
रूप देते हैं एवं वियोग में नेत्रों के प्रति बहुत कुछ
। इनमें उपालंभ पद विशेष महत्वपूर्ण हैं। प्रेम की
ता, विवशता, अतृप्ति, रहस्यात्मकता और अत्यंत
अद्भुत आकर्षण—ये व्यंग्य हैं। राधाकृष्ण के
पदों में आलंबन बनाया गया है, उनकी शैली

आलंकारिक है—नेत्रों को लेकर उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं की अत्यन्त सुन्दर योजना है। अन्य पदों में कहीं कहीं रूपक अवश्य हैं, परन्तु अधिकांश पद विवश प्रेमी का आत्मनिवेदन और आत्माभिव्यक्ति हैं, अतः उनमें अलंकारों का प्रयोग नहीं है। सीधी बात है सीधी भाषा में। उनकी मार्मिकता का कारण है (१) प्रेम और विरह की व्यंजना, (२) कृष्ण के सौन्दर्य और गोपियों के प्रेम की रहस्यात्मकता का निदर्शन, (३) असाधारण वाग्विभूति जो कहने को शेष कुछ भी नहीं छोड़ती।

मन के प्रति पद

मन के प्रति कहे पदों के संबंध में भी यही कहा जा सकता है जो नयनों के प्रति कहे पदों के संबंध में कहा गया है। दृष्टिकोण वही है। लक्ष्य भी वही है। मन के प्रति कहे पद दो श्रेणी के हैं—

१—विनय-पदों के अंतर्गत। इनमें मन को प्रबोधन दिया गया है अथवा उलाहना और भर्त्सना। इनका विशद विवेचन 'विनयपद' शीर्षक अध्याय में हो चुका है।

२—लोचन के प्रति कहे गये पदों के साथ कुछ मन के प्रति कहे पद भी हैं। कुछ की सामग्री मिली जुली है। ऐसे पद अधिक नहीं हैं यद्यपि बाद को "हिलग" के ऐसे पद पुष्टिमार्गीय कवियों ने इतने अधिक बनाये हैं कि इनका एक स्वतंत्र साहित्य ही खड़ा हो गया है। इन पदों में मन को उलाहना दिया गया है कि उन्होंने लोचनों को भड़काया और उन्हें कृष्ण को सौंप दिया।

मुरली के प्रति कहे पद

गोपियाँ मुरली के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार के भाव प्रगट करती हैं। उससे भी ईर्ष्या प्रगट करती हैं। सूर उस अनन्य प्रेम को प्रगट करना चाहते हैं जो किसी भी दूसरे को प्रियपात्र के निकट देखना नहीं चाहता। नेत्रों के प्रति कहे पदों की तरह यहाँ भी उद्भावनाओं में मौलिकता है, गोपियाँ कहती हैं—

या मुरली तऊ गोपालहिं भावति

या सखी री मुरली लीजै चोरि

ना से तो भक्त कृष्ण की मुरली बनना चाहता है।
पदों के भीतर कई प्रकार की व्यंजनायें हैं :
अलौकिक प्रभाव दिखा कर कृष्ण और उनकी ब्रजलीला
कता दिखाना—
पक की सृष्टि (योगमाया है मुरली)
प्रलंभ का योजना—गोपियाँ मुरली से ईर्ष्या-द्वेष
साधरणतः इस प्रकार की बात को मानसिक विप्रलंभ
, परन्तु इससे यहाँ आध्यात्मिक अर्थ की सिद्धि होती
ध्यात्मिक अर्थ है आध्यात्मिक विरह।
ङ्गार-काव्य की दृष्टि से मुरली उद्दीपन है।
के "वेणुगीत" और "युगलगीत" प्रकरणों में मुरली
की गई है और उसकी अलौकिकता का उद्घाटन किया
कृष्ण की यह वंशीध्वनि भगवान के प्रति प्रेमभाव को,
की आकांक्षा को जगाने वाली थी, उसे सुनकर
हृदय प्रेम से पूर्ण हो गया। वे एकान्त में अपनी
नके रूप, गुण और वंशीध्वनि के प्रभाव का वर्णन
ब्रज की गोपियों ने वंशीध्वनि का माधुर्य आपस में
चाहा तो अवश्य, परन्तु वंशी का स्मरण होते ही
की मधुर चेष्टाओं की, प्रेमपूर्ण चितवन, भौंहों के
धुर मुसकान आदि की याद हो आई। उनकी भगवान
आकांक्षा और भी बढ़ गई। उनका मन हाथ में
वे मन ही मन वहाँ पहुँच गई, जहाँ श्रीकृष्ण थे।
लित, यह वंशीध्वनि जड़, चेतन—समस्त भूतों का
है× × यह बाँसुरी तो बड़ी ढीठ हो गई है।

इसने पूर्वजन्म में न जाने कौन-सी पुण्य-साधना की है, जिससे यह श्यामसुन्दर के अधरामृत का पान करती ही रहती है। श्रीकृष्ण तो गोपियों के अपने हैं। हमने उन्हें ऊखल तक में बाँधा है। वह हमारी सम्पत्ति पर इस प्रकार क्यों अपना अधिकार जमाये बैठी है। देखो तो सही, वह सब का सब अधरामृत पी जाती है, हम लोगों के लिये तनिक भी नहीं छोड़ती × ×" (वेणुगीत) इसके बाद बाँसुरी के प्रभाव का विस्तृत वर्णन है जिसके लिये सूर अवश्य ही भागवत के ऋणी हैं (श्लो० १०-२०) "उस समय की क्या बताऊँ सखि! वह गुनिजन-मोहन संगीत को सुनकर सरोवर में रहने वाले सारस-हंस आदि पक्षियों का भी चित्त उनके हाथ से निकल जाता है, छिन जाता है। वे विवश होकर प्यारे श्यामसुन्दर के पास आ बैठते हैं तथा आँखें मूँद, चुपचाप, चित्त एकाग्र करके उनकी आराधना करने लगते हैं × × जब वे अपने लाल-लाल अधरों पर बाँसुरी रख कर ऋषभ, निषाद आदि स्वरों की अनेक जातियाँ बजाने लगते हैं, उस समय वंशी की परम मोहिनी और नई तान सुनकर ब्रह्मा, शंकर और इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता भी उसे नहीं पहचान सकते। वे इतने मोहित हो जाते हैं कि उनका चित्त तो उनके रोकने पर भी उनके हाथ से निकल कर वंशीध्वनि में तल्लीन हो जाता है, सिर भी झुक जाता है, और वे अपनी सुध-बुध खोकर उसी में तन्मय हो जाते हैं। × × × उनकी वह वंशीध्वनि × × हमारे हृदय में प्रेम का, मिलन की आकांक्षा का आवेग पैदा देती है। हम उस समय इतनी मुग्ध, इतनी मोहित हो जाती हैं कि हिल-डोल तक नहीं सकतीं, मानो हम जड़ वृक्ष हों × × हमें तो इस बात का भी पता नहीं चलता कि हमारा जूड़ा खुल गया है या बँधा है, हमारे शरीर पर का वस्त्र उतर गया है या है।" (युगलगीत)

उसमें उच्च कोटि के दर्शन और प्रेमिकाओं की आत्माभिव्यक्ति का सुन्दरतम मेल है जिसका जोड़ हिंदी के साहित्य में नहीं, तुलसी के काव्य में भी नहीं। तुलसी ने भी निर्गुण ब्रह्म के स्थान पर सगुण राम और ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की महत्ता स्थिर की है, परन्तु वह दर्शन को हृदयग्राही और काव्योपयोगी नहीं बना सके हैं। लक्ष्य एक है, शैली भिन्न। जो हो, भ्रमरगीत के प्रसंग को इस तरह भागवत के विपरीत रूप में रखना सूर की मौलिकता है। नंददास ने भी भँवरगीत लिखा है—बात वही है, ढंग दूसरा है। परन्तु वास्तव में हिंदी भ्रमरगीतों की परम्परा सूर से ही चली जान पड़ती है।

वास्तव में भ्रमरगीत और मानस में सूर और तुलसी भिन्न भूमियों पर खड़े होकर एक ही बात कह रहे हैं—निर्गुण ब्रह्म का खंडन और ज्ञान के ऊपर भक्ति की प्रतिष्ठा। इसी से सूर ने भागवत के भ्रमरगीत में यथोचित परिवर्तन करके ही उसे अपनाया है। कृष्ण द्विविध कारणों से उद्धव को गोपियों के पास भेजते हैं—

जदुपति जानि उद्धव रीति
जेहि प्रगट निज सखा कहियत करत भाव अनीति
बिरह दुख जँह नाहिं जामत, नाहिं उपजत प्रेम
रेख, रूप न बरन जाके यह धर्यो वह नेम
त्रिगुन तन करि लखत हमको, ब्रह्म मानत और
बिना गुण क्यों पुहुमि उधारै, यह करत मन डौर
बिरह रस के मंत्र कहिये क्यों चले संसार
कछु कहत यह एक प्रगटत अति भर्यो हंकार
प्रेम भजन न नेकु याके, जाय क्यों समुझाय !
सूर प्रभु मन यहै आनी, ब्रजहिं देहुँ पठाय !

इसके बाद सूर प्रेम-काव्य और भक्ति-काव्य के दो भिन्न क्षेत्रों को मिलाते हुए आगे बढ़ते हैं। प्रेम-काव्य के अंतर्गत गोपियों की अंतर्दशा आती है जिसका आश्चर्यजनक विस्तार सूरसागर में मिलेगा जैसे ऊधो में कृष्ण का भ्रम हो जाना, कृष्ण के सम्बन्ध से ऊधो का प्रिय लगना और पाती। पाती के सम्बन्ध में नीचे की उक्ति किसी भी प्रेम-काव्य पर भारी है—

निरखत अंक श्याम सुन्दर के बारबार लावति छाती
लोचन-जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गई श्याम श्याम की पाती

भ्रमर के व्याज से कृष्ण और ऊधो को उपालंभ—

यहि अंतर मधुकर इक आयो
निज स्वभाव अनुसार निकट होइ सुन्दर शब्द सुनायो

और संदेशों की बात—

संदेशनि मधुबन कूप भरे
जे कोउ पथिक गए हैं ह्याँ ते फिरि नहिं गवन करे
कै वै श्याम सिखाय समोधे, कै वै बीच मरे !

परन्तु इस प्रेम-काव्य से कुछ कम विशद नहीं है भक्ति-काव्य या भ्रमरगीत का आध्यात्मिक पक्ष जिसमें निर्गुण और ज्ञान का अत्यन्त तीव्र और मौलिक विरोध है—

(१) उद्धव ! जोग बिसरि जनि जाइ
बाँधहु गाँठ कहूँ जनि छूटै फिरि पाछे पछिताहु
(२) ऊधो ब्रज में पैठ करी
यह निर्गुन निर्मूल गाठरी, अब किन करहु खरी
(३) रहु रे मधुकर मधु मतवारे
कहा करौं निर्गुन लैकै हौं, जीवहु कान्ह हमारे
(४) निर्गुन कौन देस को बासी !

इस निर्गुण-सगुण के विरोध को सूर अत्यन्त स्पष्टता रखते हैं—

बार-बार ये बचन निवारो
भक्ति-विरोधी ज्ञान बिहारो
सुनिहै कथा कौन निर्गुन की रचि-पचि बात बनावत
सगुन सुमेरु प्रगट देखियत, तुम तृन की ओट दुरावत
रेख न रूप, बरन जाके नहिं ताको हमैं बतावत
अपनी कहौ, दास वैसे को तुम कबहूँ हौं पावत ?
मुरली अधर धरत है सो पुनि गोधन बन-बन चारत
नैन विशाल, भौंह बङ्कट करि, देख्यो कबहुँ निहारत
तन त्रिभंग करि, नटवर बपु धरि, पीताम्बर तेहि सोहत
सूरश्याम ज्यौं देत हमैं सुख त्यों तुमको सोउ मोहत

इस सगुण का मार्ग भी सीधा है। इसी से गोपियाँ चिढ़ कर कहती हैं—

काहे को रोकत मारग सूधो
सुनहु मधुप ! निर्गुन कंटक तें राजपंथ क्यों रूधो !

यह मार्ग तो प्रेम (भक्ति) का मार्ग है, ज्ञान का नहीं। भ्रमरगीत प्रसंग के अंत में उद्धव की पराजय भक्ति की ज्ञान पर विजय ही घोषित करती है—

सूर योग की कथा बहाई
शुद्ध भक्ति गोपीजन पाई

परिशिष्ट

जीवनी, व्यक्तित्व और रचनाएँ

सूरदास के जीवनी की संबंध में हम अभी निर्णयात्मक खोज नहीं कर पाये हैं। अब तक की खोजों के आधार पर हम उनके जीवन की रूपरेखा-भर बना सकते हैं। इन खोजों का आधार आत्मनिवेदन-संबंधी पद, कूट-पद, किंवदंतियाँ, वल्लभसंप्रदाय की मान्यताएँ सब इतिहासकारों और अन्य समकालीन लेखकों की रचनाओं के उल्लेख हैं। परन्तु वास्तव में सूर की सब से सुन्दर जीवनी उनकी रचनाएँ ही हैं। उनके काव्य में सन्निहित अंतर्वृत्तियाँ उनके व्यक्तित्व का परिचय देने में अमूल्य हैं।

संक्षेप में हम सूर के जीवन-वृत्तांत को इस प्रकार रख सकते हैं। उनका जन्म सन १५४० में व्रजप्रदेश में हुआ। वे जन्मांध नहीं थे। कदाचित् तरुणावस्था में वह विरक्त हो गये और गऊघाट पर स्थान बना कर रहने लगे। उस समय वे एक साधारण वैष्णव भक्त थे। किन्तु धीरे-धीरे वे प्रसिद्ध हो गये। सं० १५७६ वि० में महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पूर्णमल्ल के मन्दिर में श्रीनाथजी की पुनः स्थापना की। कदाचित् उसी समय के लगभग वे व्रजप्रदेश का परिभ्रमण करते हुए गऊघाट पर आ निकले। सूरदासजी ने आचार्य जी से भेंट की और उनकी आज्ञानुसार अपने विनय के पद सुनाये। आचार्य ने उन्हें पुष्टिमत में दीक्षित किया। उन्हें भागवत की कथा सुनाकर भगवत्लीला गाने के लिये कहा। अपनी मृत्यु तक सूरदास जी ने 'सहस्रावधि' पद गा लिये थे जिनमें कृष्णलीला ही प्रधान थी। कृष्ण-चरित्र में उन्होंने अनेक प्रकार के परिवर्द्धन किये और रूपकों के रूप में अनेक कथाएँ

गढ़ कर कृष्ण के चरित्र को आध्यात्मिक साधन का अंग बनाया। वृद्धावस्था में विट्ठलनाथ या किसी और के कहने से उन्होंने अपनी रचनाओं को भागवत के साँचे में ढाल दिया। कृष्ण-चरित्र को छोड़ कर 'सूरसागर' की अन्य अवतारों की कथा भागवत के उन अंशों का स्वतंत्र उलथा है। उन्होंने ६७ वर्ष की आयु में (सं० १६०१ वि०) अपनी रचनाओं का अधिकांश भाग पूरा कर लिया था। वृद्धावस्था के साथ वे कदाचित् नेत्रहीन हो गये। कदाचित् प्रौढ़ अवस्था में ही उनके नेत्र जाते रहे हों, उनकी प्रसिद्धि के समय में उन्हें नेत्रहीन पाकर ही इस प्रकार की कथायें चल पड़ी हों जो वास्तव में "बिल्वमंगल सूरदास" से संबंधित हैं।

वृद्ध होते होते उनकी कीर्ति चतुर्दिक फैली हुई थी और कदाचित् सम्राट् अकबर ने उनसे भेंट की। भेंट के काल और स्थान के संबंध में हम निश्चय-पूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते। पुष्टिमार्ग के अन्य भक्त उनको बड़ी श्रद्धा से देखते थे। वल्लभाचार्य के निधन के बाद उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ गद्दी पर बैठे। उन्होंने सूरदास को "पुष्टिमार्ग का जहाज" कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि वल्लभाचार्य के निधन के बाद विट्ठलनाथ ने पुष्टिमार्ग के स्वरूप को स्थिर करने की जो महत्त चेष्टा की उसके पीछे वयोवृद्ध कवि सूर की प्रेरणा, शक्ति और उनके काव्य की लोकप्रियता का बल था। सूरदास की मृत्यु पारसौली ग्राम में गोस्वामी विट्ठलनाथ के सामने हुई। विट्ठलनाथ राजभोग से निश्चिन्त होकर समाप्त करके सूरदास की मृत्यु-शय्या पर पहुँचे थे, ऐसा वार्ता से प्रगट है। राजभोग का समय दोपहर था। अतः सूर का निधन दोपहर को हुआ।

सूर की इतनी सी जीवनी का मुख्य आधार "८४ वैष्णवन की वार्ता" है। परन्तु अब भी हम सूर के सम्बन्ध में बड़े गहरे अं

कार में पड़े हैं। पहली बात, उनका नाम क्या था ? सूरजदास, सूरदास, सूरश्याम, सूरजचंद इत्यादि एक दर्जन नाम हमारे सामने हैं। दूसरी बात, उनकी जाति क्या थी ? उनके माता-पिता कौन थे ? उनके जातिगत और व्यक्तिगत संस्कार क्या थे ? हम इन प्रश्नों का कोई भी संतोषजनक उत्तर नहीं दे सकते। हमने यह अनुमान लगाया है कि उनका मौलिक नाम सूरजदास था परन्तु वे सूर, सूरदास आदि नाम छंद अथवा संदर्भ की आवश्यकता के कारण लाते थे। परन्तु जाति के सम्बन्ध में हम किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके हैं। उन्हें सारस्वत ब्राह्मण और भाट बताया जाता है।

जहाँ तक व्यक्तित्व का सम्बन्ध है, उसके विषय में हमें सूरदास के साहित्य से ही संतोष करना पड़ता है। उनका व्यक्तित्व अवश्य ही उनके काव्य की तरह मधुर रहा होगा। वे विनयशील हरि-प्रेम-विह्वल, सहृदय और अत्यंत भावुक रहे होंगे। उनका सूरसागर उनकी भावुकता का विशाल, अगाध अंबुधि है जिसके तल विरले ही पा सकते हैं।

सूरदास के ग्रंथों के सम्बन्ध में भी परिस्थिति इतनी ही अनिश्चित है जितनी उनकी जीवनी के सम्बन्ध में। नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में सूरदास के १६ ग्रंथों का उल्लेख है, १ गोवर्धनलीला बड़ी, २ दशमस्कन्ध टीका, ३ नागलीला, ४ पद-संग्रह, ५ प्राणप्यारी (श्यामसगाई), ६ ब्याहलो, ७ भागवत, ८ सूरपचीसी, ९ सूरदासजी का पद १० सूरसागर, ११ सूरसागर सार, १२ एकादशी माहात्म्य, १३ रामजनम, १४ सूरसारावली, १५ साहित्यलहरी और १६ नलदमयन्ति। इन सब ग्रंथों की परीक्षा नहीं हुई है, परन्तु यह तो स्पष्ट है कि सूरसारावली और सूरसागर सब एक ही ग्रंथ हैं। नलदमयन्ती को डा०

समझ कर काम शुरू किया था और पहले नौ स्कंध और दसवें स्कंध के कुछ अंश प्रकाशित भी हो चुके हैं। जब तक यह संस्करण पूरा नहीं हो जाता या कोई दूसरा वैज्ञानिक ढंग से संपादित नवीन संस्करण सामने नहीं आता, तब तक सूरदास और उनके काव्य का विशद अध्ययन नहीं हो सकता।